मामुलिया

सृजन और आलोचना का प्रमुख त्रैमासिक

१

शोधनिबंध—मौर्यकालीन बुंदेलखण्ड. दीवान प्रतिपालसिंह, दतिया राज्याश्रित औरंगजेब का हिन्दू इतिहासकार. डा० भगवानदास गुप्त, बुंदेलखण्ड का सीमांकन. डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, ईसुरी : एक पुनर्मूल्यांकन. डा० नाथूराम चौरसिया, बनाफरी का कहरी लोकगीत. आशाराम त्रिपाठी, कहावतों में चित्रात्मकता. डा० वीरेन्द्र निर्झर, बुंदेली पहेलियों में गुम्फित त्रेतायुगीन धार्मिक कथाएँ. डा० कृष्ण कुमार हूंका, मामुलिया. डा० कन्हैयालाल वर्मा 'बिन्दु'

ललित निबंध—कृत्तिकाएँ : आकाश की मामुलिया. दुर्गाचरण शुक्ल

कहानियां—मेघप्रिया. कान्ति खरे, मस्तानी. चौधरी किशोरी लाल, होरी को रंग. मालती घोष

कविताएँ—बख्शी हंसराज, भवानी शंकर, प्रह्लाद तिवारी, भैयालाल व्यास राजा संतोषसिंह, श्रीनिवास शुक्ल, कैलाश मड़वैया, ब्रजलालमिश्र, रामनाथ गुप्त 'हरिदेव', गुणसागर सत्यार्थी, रतिभान तिवारी 'कंज', रामशरण दीक्षित 'सुमन' परमकवि, चिरंजीव कुमार अग्रवाल, प्रमोद दुबे, लल्लूमल चौरसिया, डा० नारायण सोनी 'विवेक'

संस्मरण—मिलो तौ तनकई देर खों हतो तौऊ भौत नौनो लगो तो. वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

लघुकथाएँ—मुझे नहीं मालूम. हरिसिंह घोष, आपके लिये नहीं. अभिताभ गुप्त,

वार्ता—अथाई की बातें. ठाकुर भगवानसिंह गौड़

स्तम्भ— • शब्द बोलते हैं • पाठ-निर्धारण • अनूदित • उगती कोंपल • अज्ञात कृति : कवि जगतनंद और उपखाने सहित दशमस्कन्ध चरित्र • अपने मन मानिक के लानें सुगर जौहरी चानें

चैत्र-बैशाख-ज्येष्ठ संवत् २०३८ मूल्य : चार रुपए

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी प्रकाशन

मामुलिया
चैत-वैशाख-ज्येष्ठ, संवत् २०३८

सम्पादक डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त सहसम्पादक डा० वीरेन्द्र निर्झर
प्रबंध सम्पादक चौधरी किशोरी लाल

मामुलिया के सजेधजे फूल : खोर-खोर गली-गली उठते मस्तूल

अगले अंक की बानगी

- कालप्रियनाथ के परिचय पर पुनर्विचार / महामहोपाध्याय डा० वी० वी० मिराशी
  महाकवि भवभूति के नाटकों का मंचन काल गी के कालप्पदेव मंदिर में हुआ था, कालप्पदेव के टीले पर एक महत्वपूर्ण शोध।
- बुन्देलखण्ड के प्राचीन इतिहास पर स्व० म० कु० प्रतिपालसिंह की खोज अगली किश्त में एक मौलिक और नवीन प्रस्तुति।
- बुन्देली लोक संगीत / प्यारे लाल श्रीमाल
  लोकसंगीत के जानेमाने पारखी की आँख से एक सूक्ष्म विवेचन।
- दतिया की पाण्डुलिपियाँ / डा० कृष्णबिहारी लाल पाण्डेय
  दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों की एक सूची संक्षिप्त विवरण सहित।
  तथा रीतिकाव्य का मूल उत्स : साहित्येतिहास में नई स्थापना एवं अन्य शोधपूर्ण निबन्ध।
- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त / स्व० सेठ गोविन्ददास
  संस्मरणों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कड़ी।
- सुविख्यात कवियों और कहानीकारों की रचनाओं के स्तवक।
- बुन्देली कविताओं, कहानियों, लोककथाओं, वार्त्ताओं के अनोखे रंग।
  और सभी स्थायी स्तम्भ : शब्द बोलते हैं, अनूदित, पाठ-निर्धारण, अज्ञात कृति, उगती कोंपल, पोथियों का पन्ना।

निवेदन

०

- मामुलिया में प्रकाशनार्थ प्रेषित रचनाएँ फुलस्केप साइज के कागज पर एक तरफ सुलिखित या टंकित हों। अस्वीकृत रचनाएँ लौटाने की व्यवस्था

नहीं है। स्तरीय और उपयोगी रचनाओं की स्वीकृति-सूचना यथासमय स्वतः भेज दी जाएगी।

- विशिष्ट स्तम्भों के लिए भेजी गयी रचनाओं के एक सिरे पर स्तम्भ का नाम अंकित होने से सुविधा होगी।
- 'पोथियों का पन्ना' स्तम्भ के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है।

सहयोग

●

- ☐ स्तरीय रचनाएँ भेजने का आपसे अनुरोध है।
- ☐ पत्रिका के वार्षिक सदस्य बनकर अनुगृहीत करें।
- ☐ पत्रिका के लिए विज्ञापन भेजकर अपने को लाभान्वित करें।

सम्पर्क-सूत्र

- ☐ सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुक्लाना, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०
- ☐ व्यवस्थापकीय : किशोरी लाल चौधरी, हटवारा, छतरपुर—४७१००१, म० प्र०

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१ (मध्य प्रदेश)

अपने मन मानिक के लानें
सुगर जौहरी चानें

आँखें ठिले तला सीं : एक उपमान की यात्रा

उस दिन उपमाओं की बात हो रही थी और बातों ही बातों में एक बुन्देली उपमा महुए की तरह टपक पड़ी—'आँखें ठिले तला सीं।' प्यासा मन अघा गया, जैसे चातक को स्वातिबिन्दु मिल गया हो। इतना ही नहीं, गाँव का लोकगीत और भी आगे बढ़कर कभी-कभी 'आँखें ठिले समुन्दर सीं' कह देता है। फिर याद आ जाता है ब्रज का वह लोकगीत, जिसमें 'डाबरनैनी' का चित्र उरेह गया है—'नाएं खोलू बजर केबार पराये पुरख ते ए डाबरनैनी चौं हँसी जी।' ब्रजी में डाबर का अर्थ चाहे बड़ा दोना हो, चाहे नीची जमीन जहाँ पानी ठहरा रहे, लेकिन बुन्देली के डबरा और पुखरा पानी से लबालब भरे बड़े गड्ढे ही हैं। आधुनिक काव्य में आँखों को झील कहने का चाव चाहे पश्चिम से आया हो या पूर्व से, बहरहाल मूल में वही है, जो डाबर, तला और समुन्दर में है। एक उपमान की यात्रा ठीक उस पर्यटक जैसी है, जो हिमालय से कन्याकुमारी तक घूमता है एक-सी भावना लिए। बुन्देली उपमान को गढ़ने की भावना भी उसी नजरिये से देखना चाहिए। सारे देश के पाठक मामुलिया के बुन्देली रंग को उसी आँख से देखेंगे।

हम खाँ एकई पीरा आँसी : पीड़ा की एक गाथा

इस धरती में बड़े कीमती रत्न भरे हैं, पर न जाने क्यों हम उनकी माला नहीं गूँथते। यहाँ पुराने ग्रंथों का एक खजाना गड़ा है, पर वह धीरे-धीरे या तो चोरी-छिपे बिक रहा है या कुछ तिजोड़ियों में बन्द हो रहा है। भोले-भाले पहरेदार बातों में आकर बहक जाते हैं और हम भलमनसाहत में कुछ भी कर नहीं पाते। केवल अपनी व्यथा-कथा एक दूसरे से सुनाकर अपना जी हल्का करते रहते हैं। दूसरी तरफ जो कुछ रचनाधर्मी रचते रहते हैं, उन्हें भी प्रकाशन का मौका नहीं मिल पाता। आज तक कोई ऐसी संस्था नहीं आई,

जो प्रकाशन का लक्ष्य साध कर चलती। यह एक ही दर्द नहीं है, वरन् हजारों दर्दों का एक समूचा पेड़ ही खड़ा हो गया है। विद्वानों ने शोधग्रंथों की गड्डियां लगाना शुरू कर दी हैं, खोज का चाव इतना बड़ा है कि कभी-कभी छाती फूल जाती है। लेकिन जब गहराई पर पहुँच कर देखते हैं, तो वही ठहरा हुआ पानी और वही तरंगें। चिन्तन का नया ज्वार जैसे किनारों पर बैठा नींद के झपके लेता रहता है। आखिर यह पीड़ा का पेड़ फलों का प्रसव कब करेगा ?

जौ घर सौत सौत के मारें : भीड़ सा बिखराव

सौतों से भरे घर की हालत क्या होगी, यह कल्पना लोककवि करता है और आपके लिए एक चित्र पेश करता है। दूसरा चित्र भी आपके सामने है यहाँ की संस्थाओं का। हर टुकड़े में एक संस्था कुण्डली मारे बैठी हुई। जिसको जरा भी हुमक लगी, संस्था खुल गई। लेकिन इससे क्या, हर का अपना विधान और अपनी गतिविधि। हर संस्था थोड़ा-थोड़ा करे, तो न जाने क्या हो जाय। पर सौतिया डाह घर को भीड़ बना देता है। भीड़ सा बिखराव कुछ नहीं कर पाता। काम होता है एक लक्ष्य और एक भावना से। अच्छा यह हो कि हर संस्था के एक-एक प्रतिनिधि से एक केन्द्रीय संस्था बन जाए और वह सभी बिखरी संस्थाओं के बीच कड़ी का काम करे। एक निश्चित कार्यक्रम और सभी की जिम्मेदारी। आखिर यह एकजुटता का धर्म कब आएगा।

ठुमक चली मामुलिया : फिर एक कोशिश

मधुकर और लोकवार्ता के बाद एक सूनापन। ईसुरी परिषद ने योजना बनाई थी लोकवार्ता को दुबारा लाने की, पर दो मुहरों ने मिलकर मात दे दी। फिर कोशिश और मामुलिया की सजधज। काँटों का एक झकरा और रंगबिरंगे फूलों का एक स्तवक। फूलों में कोई भेद-भाव नहीं। जिस मौसम में जब जो मिले, उन्हीं को चुनकर सजाने की मंसा का प्रतीक। शोध-निबंध और सृजन, अनुवाद और पाठनिर्धारण, अज्ञात कृति और ज्ञात प्रवृत्ति, हिन्दी और बुन्देली, पुराने बटवृक्ष और नई कोंपल, सभी तरह के फूलों से गुंथी एक माला अपनी धरतीमाता के गले में पड़ी हुई। ठुमक कर चल रही है मामुलिया, पुराने लोकगीत की धुन के साथ—ल्यइयो ल्यइयो चमेली के फूल सजैयो नोनी मामुलिया।

सुगर जोहरी चानें : सही परखाव की आस्था

कीमती मन-माणिक्य तो बिखरे पड़े हैं, पर उनको खोजने की जरूरत है। खोजे कौन ? किसको है फुरसत ? खासतौर से इस व्यस्तता के युग में, जब

सब अपने-अपने धंधों में लगे हैं। धंधे भी इतने ज्यादा कि हर तरफ केले के पत्तों की तरह एक दूसरे की कोख से उगते हुए और मन-तुरंगों में सवार चाहे जहाँ दौड़ते हुए। साहित्य भी इस दौड़ में पीछे कैसे रह सकता है, साहित्यकार किस बात में कम है। युग की नीतिरीति पर न चले, यह कैसे हो सकता है। फिर उसे सब कुछ अपनाना ही पड़ेगा और लेन-देन में कुछ सौदे करना ही पड़ेंगे। मन-माणिक्य भी बिक जाएं, तो क्या हर्ज है। उसे कौन देखता है। देखने का डर है, तो रात की रोशनी के साये में किसी नामवर व्यापारी की हथेली में चुपके से रखना ठीक है। गिरवी रहे, दोनों हाथों में लड्डू। लाभ का लाभ और कवच। हथेलियों में कवच ओढ़े और लाभ की आँखें जड़े यदि कोई असली नजर का परखाव भूल जाता है, तो उसका क्या दोष। इसीलिए सुघर जोहरी की तलाश का औचित्य है। जोहरी, जो सही कसौटी पर सही पहिचान कर सके। कितने मानिक धूल में पड़े हैं या कोठरियों में बहुत नीचे गड़े हैं, उनके लिए जोहरी का परखाव चाहिए। आप ऐसे सुघर जोहरी हैं कि मामुलिया के खजाने से कीमती रत्न परखेंगे। अगर उसमें एक भी रत्न आपके मन का निकल सका, तो वह अपनी सार्थकता समझेगी।

मोय बल रात रसिक रतनन कौ : सहयोग की चिठिया

मामुलिया ठुमक कर चली है सजी गुड़िया की तरह। लेकिन उसे हाथों-हाथों ले चलने का बीड़ा रसिकों का है। वह तो चुपचाप कुछ बोल रही है एक चिठिया-सी, जिसे पढ़ना भी आप सबके लिए जरूरी है। उसके लिए जो भी बन पड़े, उसे करने का विश्वास लिये। अगर आप थोड़ा-थोड़ा सहारा देते हैं, तो बराबर सजती रहेगी और खोर-खोर में उसका गीत गूंजता रहेगा। वही मिले-जुले रंग और वही तरह-तरह की सुगंध। इस धरती को चेतना की धड़कनें समेटे। यदि आप चाहते हैं कि ये धड़कनें कभी न रुकें, तो उन्हें अपनी धड़कनें मानकर उसे हरी भरी रखना होगा और यह जिम्मेदारी हम सबकी है। सब फिर मिलकत एक ही धुन में गाएं—ल्यइयो ल्यइयो सनेहन के फूल सजैयो नोनी मामुलिया। ल्यइयो ल्यइयो रतनजड़े फूल····।

—सम्पादक

उराहनौ

बख्शी हंसराज

●

[यह काव्यांश सुविख्यात प्राचीन कवि बख्शी हंसराज की एक प्रज्ञात कृति 'राजचंद्रिका' के १२वें प्रकाश से उद्धृत किया गया है। राजचंद्रिका में बालकृष्ण की क्रीड़ाएं और किशोरकृष्ण की लीलाएं बुन्देली लोकरंग से भींज कर एक निराली इन्द्रधनुषी सम्मोहन उरेहतीं हैं। बुंदेली भाषा के सटीक प्रयोगों के लिए उसे एक आदर्श रचना के रूप में सदैव स्मरण किया जाएगा।]

करत अठाव अनेक विध घर बाहिर घनस्याम।
जसुमत गेह उराहनौ चली दैन ब्रज बाम॥
कांन्हर कांन अठाइ कै कैयौ करत अठाइ।
एकै दैति उराहनौ एकै दै फिर जांइ॥
खात खबावत गोरसहि कबहूं लै भज जात।
निकट देख कर दौरियत दौरैं दूर दिखात॥
इकठी ह्वै दिन दूसरैं पकरैं हम गहि बांह।
का ह्वै इन कबहूं नहीं छिन न छिबाई छांह॥
जसुमत तुम मानत नहीं इनहि लखौ अब काइ।
कीजै कहा उराहनौ गनैं न गुन गन जाइ॥
मनै करौ जसुमत इन्हैं कहियत है पर पांउ।
होइ हमारौ कौन बिध बसबौ गोकुल गांउ॥
दही दूध खैहैं कितौ सखिन खबावहु जाइ।
ढार बकारथ देत सो कौन ठकुरई आइ॥
गारीं बहु बिध देत हैं माठ फोर ढरकाइ।
राखहि भींत कपाट सों दही दूध लपटाइ॥

पैठत हैं यह खोर से देखत नाहीं कोइ॥
धरौ दूर पकवान जो खात खबावत सोइ॥
मांठन कीजै खपरियां इकठी ते कर लैइ।
कहियत जो कछु खूंस कर तौ आगे धर देइ॥
हटके ते लागत हँसन छोड़ देत बछरांन।
डरपावैं बहु दीनता रोइ दिखावत आंनि॥
दै पिछवारैं खान कौं भीतर सखन पठाइ।
भाग जात छल सौं अपुंन औरन देत बँधाइ॥
गहिबे कौं जो दौरियतु बिलगैया दै जात।
छैंक पकर पाये कहूं लगि तौ लपटत गात॥
दही दूध घ्रत छांठ भर सीकैं धर प्रत माठ।
तेऊ लैहि उतार ऐ चढ़ मांचौ पुन खाट॥
हुद्दवे सांकर खोल कैं आवत टटिया टार।
दीबो टटा कपाट कौ तजौ सबन हूंम हार॥

मौर्यकालीन बुंदेलखण्ड

स्व० म० कु० दीवान प्रतिपाल सिंह

[प्रस्तुत अंश लेखक के अप्रकाशित ग्रंथ 'बुंदेलखण्ड का इतिहास' के द्वितीय खण्ड से यथावत् उद्धृत किया गया है। १२ खण्डों और १४ हजार पृष्ठों का यह विशालकाय ग्रंथ लेखक के २८ वर्षों के अनवरत श्रम का सुफल है। १९२६ ई० से ही प्रकाशन की प्रतीक्षा में अपनी आयु की घड़ियां गिन रहा है। लेखक की अन्य कृतियां—वीरबाला, खेल-शतक, शृङ्गार-कुण्डली, होली हजारा, छत्रप्रकाश आदि करवटें बदल कर थक गई हैं। शायद उस पुण्य नक्षत्र की बाट जोहतीं हुई, जब इस जनपद की चेतना अपने साहित्य-साधकों के लिए वामन का अवतार धारण करेगी। यह अंश लेखक के सुपुत्र कुं० पृथ्वीसिंह बुंदेला के सौजन्य से प्राप्त हुआ है और पाद-टिप्पणियां सम्पादक की हैं।]

•

मगध के मौर्य सम्राटों के समय में बुन्देलखण्ड में कौन राजा थे, और कैसा शासन प्रबन्ध चलता था, सो ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। कदाचित यहाँ पर जंगल अधिक थे, विन्ध्याचल के पहाड़ी स्थानों में तथा उसके आस-पास प्राचीन असभ्य अनार्य जातियाँ बसी थीं, वे प्राचीन ढंग की नाम मात्र की सत्ता जमाये हुए थीं और कदाचित समथल उर्वरा प्रदेशों में आर्य बसे हुए थे। सम्भवतः स्थानीय अनार्यों पर भी वे शासन करते थे। ये सब स्थानीय अधिपति बलवान मौर्य साम्राज्य के शासनधीन थे। यहाँ के ऐतिहासिक विवरणों से ऐसे ही स्थिति का होना पाया जाता है।

मौर्यों के समय के लेख, स्तूप आदि इस देश में मौजूद हैं। प्राचीन ग्रन्थों और लेखों तथा ओरछा आदि गजेटियरों से पता चलता है कि गौतम बुद्ध के समय में कन्नौज के पांचालों का राज्य ग्वालियर से केन नदी तक था। कौशाम्बी के वत्सों का राज्य उनके पूर्व में था तथा चेदि वाले उनके पूर्व में उन्हीं वत्सों के आधीन थे। इनसे पूर्व[2] सोन नदी से मगध का राज्य था। शावस्ती[3] और मगध में श्रेष्ठता के लिए संघर्ष चल रहा था। अन्त में मगध अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में कृतकार्य हुआ था। मगध में मौर्य वंश बड़ा प्रतापी हुआ है। इस वंश में ईस्वी सन् से पूर्व चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके पौत्र अशोक का राज्य हिमालय से मैसूर तक था। यह समस्त बुन्देलखण्ड उस समय में उन्हीं के अधीन था। मौर्यों का साम्राज्य बिगड़ने पर जहाँ तहाँ छोटे-छोटे राजा हो गये थे। उस समय से ७वीं शताब्दी ईस्वी तक देश की दशा का ठीक-ठीक हाल नहीं मिलता है। इसी प्रकार जालौन गजेटियर में लिखा है कि निश्चय ही यह जिला मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यों के अधीन था।

झांसी गजेटियर में लिखा है कि बहुत प्राचीन इतिहास की सामग्री अलभ्य है। कदाचित यह देश जंगली था और असभ्य जातियाँ मौर्य अथवा अन्य उत्तरी सम्राटों के अधीन रही हैं। बांदा गजेटियर में लिखा है कि अशोक की मृत्यु (सन् ईस्वी से २३२ वर्ष पूर्व) तक बांदा मौर्य साम्राज्य का अंग था। विन्ध्याचल पर्वत श्रणी की निकटवर्ती भूमि पर अन्य जातियाँ नाम मात्र का अधिकार किये हुए थीं। मौर्यों के उपरान्त कदाचित मैदानी प्रदेश पर शुंगों का अधिकार हुआ था।

जबलपुर गजेटियर में लिखा है कि सिहोरा तहसील के रूपनाथ में प्रख्यात मौर्य सम्राट अशोक का शिलालेख विद्यमान है। इससे ३री शताब्दी ई० पू० में इस प्रान्त की स्थिति का प्रामाणिक पता चलता है। इस लेख में लिखा है कि उसके लिखने के समय बुद्ध का निर्वाण हुए २५६ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इससे ज्ञात होता है कि २३२ बी० सी० में अशोक की मृत्यु होने से कुछ ही समय पहले वह लिखा गया था। यह लेख मध्य प्रदेश में सबसे पुराना है।

जबलपुर जिले में बहुरीबंद से ८ मील उत्तर तिगवां गांव में एक चौकोर ढेर है और कंकाली देवी का मंदिर है। यह सागर जिले के एरन के समान प्राचीन है तथा यहाँ के मन्दिर सांची के बौद्ध मंदिरों के समान हैं। अनुमान से

१. चेदि जनपद की स्थिति वंस (वत्स) जनपद के पश्चिम में थी। (प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, बिमल चरण लाहा, अनु० रामकृष्ण द्विवेदी, पृ० ८३।)
२. चेदि और वंस दोनों के पूर्व में।
३. यहाँ लेखक का अभिप्राय कौशल जनपद से है, जिसकी राजधानी सावत्थी या श्रावस्ती थी।

यह तीसरी शताब्दी ई० पू० तक का पुराना है । यहाँ ३०० मंदिरों तक के खंडहर[३] हैं । इसे आल्हा की चढ़ाइयों के सिलसिले का झंसन गढ़ कहते हैं

तेवर जबलपुर से ८ मील पश्चिम गढ़ा के पास है । इसका प्राचीन नाम त्रिपुरि था । यहाँ तीसरी श० बी० सी० के सिक्के मिले हैं । पाँचवीं शताब्दी ई० के परिव्राजक महाराजाओं के लेख में इसका नाम है । यह डाहल के कलचुरि राजाओं की राजधानी थी । भिलसा से उत्तर पश्चिम में वेश नगर या वासे नगर या चैत्यगिरि नगरी थी ।[४] वेश नगर में कम से कम अशोक के समय तक के खंडहर हैं । यहाँ उज्जैन के पश्चिमी क्षत्रप, नखर के नाग और गुप्तों के सिक्के मिले हैं । कहते हैं कि राजा रुक्मांगद ने अपनी वेश्या विश्व के नाम से इस नगर का नाम वेश नगर रखा था । यहाँ अशोक ये समय के तर्ज की लिपियाँ हैं । भेलसा का पुरान नाम भैल स्वामिन या भैल्लिश था ।[५] वहाँ के कोट में एक लेख है कि चेदि के राजा को हराने वाले राजा कृष्ण के मन्त्री वाचस्पति ने वेत्रपती के किनारे पर भैल्लेश का मंदिर बनवाया ।[६] ब्राह्मणों की धार्मिक पुस्तकों में इस नगर को भद्रावती लिखा है। कहते हैं कि यहाँ के राजा यवनाश्व ने युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ के लिए प्रख्यात घोड़ा दिया था । जैन लेखों में इसे भादलपुर लिखा है तथा वे दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ का जन्म यहाँ होना मानते हैं । ऐतिहासिक समय में वेशनगर अशोक की तीसरी शताब्दी में गौरव रखता था, फिर पूर्वी मालवा की राजधानी विदिशा नाम से प्रख्यात हुआ था तथा सुंग[७] राजा अग्निमित्र का वास स्थान रहा था । चौथी या पाँचवीं शताब्दियों के गुप्तों के चिह्न उदगिरि में हैं । बृहत् संहिता में विदिशा नाम नगर और नदी का लिखा हुआ है ।[८]

———

४. वैश्यनगर भी बेसनगर का एक प्राचीन नाम था । (प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल (पृ० ५५६) ।

५. एपि० इं०, २४ वाँ भाग, पाँचवाँ वाल्युम, जन० १८३८, पृ० २३१ में भिलसा नगर के नामकरण का कारण भैलस्वामी का मंदिर बताया गया है ।

६ डा० हाल ने जर्नल ऑफ बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ३१, पृ० ११२ में इसे सूर्य मंदिर माना है ।

७. शुंग ।

८. पूरे वर्णन के लिए ए सर्वे आफ इण्डिया, वाल्युम १० देखिए ।

दतिया राज्याश्रित औरंगजेब का हिन्दू इतिहासकार

डा० भगवानदास गुप्त

औरंगजेबकालीन (१६५८-१७०७ ई०) बुन्देलखण्ड के इतिहास की कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी के लिए और आलमगीर के समकालीन प्रमुख बुन्देला शासकों, जैसे पन्ना के महाराज छत्रसाल, ओरछा के उदोतसिंह, ददिया के दलपतराय और रामचन्द्र आदि, से संबंधित कुछ प्रामाणिक सूचनाओं के लिए हम औरंगजेब के हिन्दू इतिहासकार 'नुस्खा-ए-दिलकश' के लेखक भीमसेन के विशेष ऋणी हैं। संयोग की बात तो यह है कि भीमसेन भी इस बुन्देल-धरा का, जिसने कि १८ वर्षों तक उसका भरण-पोषण किया था, कम ऋणी नहीं है ।

भीमसेन जाति से सक्सेना कायस्थ था । उसका जन्म खानदेश की राजधानी बुरहानपुर में १६४६ ई० में ही कभी हुआ था । उसका पिता रघुनन्दन दक्षिण में नियुक्त तोपखाने में मुशरिफ था । भीमसेन ८ वर्ष की आयु में औरंगाबाद अपने पिता के पास चला आया था । यहीं ६ से १५ साल तक अपने पिता की देख-रेख में उसने फारसी पढ़ी । रघुनन्दन वृद्ध हो चला था और तोपखाने के मुशरिफ का काम उससे अकेले नहीं संभलता था । इसलिए भीमसेन अपने पिता की सहायता करने लगा और सात वर्ष तक उसका नायब रहा । रघुनन्दन ने १६७० ई० में अपनी नौकरी छोड़ दी और भीमसेन को कुछ दिनों तक यहाँ-वहाँ मारे-मारे फिरने के पश्चात् बख्शी मीर अब्दुल मबूद के अधीन दाऊद खाँ की सेना में मुशरिफ की नौकरी मिल गई । तब दक्षिण में शिवाजी के विरुद्ध लगातार मुगल चढ़ाइयाँ हो रही थीं । भीमसेन कुछ समय तक महाराजा जसवंत सिंह राठौर और फिर बख्शी दाऊद खाँ की सेवा में भी रहा । सन् १६७२ ई० में वह दक्षिण के नये सूबेदार बहादुर खाँ की सेना में मुशरिफ बन गया और १६८६ ई० तक इसी पद पर काम करता रहा, फिर वह

अपना काम गुमाश्ताओं पर छोड़कर नालदुर्ग में अपने परिवार के पास आकर रहने लगा और लगभग दो वर्ष पश्चात शोलापुर में फिर मुगल सेना में आ गया। यहीं वह दतिया के राजा दलपतराव बुन्देला के सम्पर्क में आया और दलपत ने उसे अपना व्यक्तिगत सचिव बना लिया। उसके वेतन के लिए दतिया के राज्य में उसे १२००० रु० सालाना मालगुजारी के प्रदेश दे दिये गये थे। भीमसेन ने बड़ी ही निष्ठापूर्वक १८ वर्षों तक दलपतराव की सेवा की। सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु पर जब उसके तृतीय पुत्र आजमशाह और ज्येष्ठ पुत्र बहादुरशाह प्रथम में आगरा के निकट जाजऊ के मैदान में ८ जून, १७०७ को युद्ध हुआ, तो दलपतराव ने आजम की ओर से युद्ध में भाग लिया था। भीमसेन भी इस युद्ध में दलपत के साथ ही उसी के हाथी के होदे पर पीछे बैठा हुआ था। युद्ध में एक गोले से दलपतराव की मृत्यु हो गई और भीमसेन घायल हो गया। भीमसेन ने अपने स्वामी की दाहक्रिया आगरे में १६ मील दूर धामसी में की और वह दु.खी मन दतिया लौट आया। यहाँ दलपतराव के दो पुत्रों रामचन्द्र और पृथ्वीसिंह में दतिया की गद्दी के लिए युद्ध ठन गया। भीमसेन अब दतिया में और ठहरना उचित न समझ अपने परिवार सहित ग्वालियर चला गया। दलपतराव की मृत्यु से उसकी जीविका चली गयी थी और वह स्वयं वृद्ध हो गया था। उसने किसी तरह अपने दो पुत्रों वृजभूषण और शंभुनाथ को शहजादा खुजिस्ता अख्तर की सेवा में लगा दिया और फिर अपना अन्तिम समय भजन-पूजन में शान्तिपूर्वक काटने लगा। उसकी मृत्यु कब और कहाँ हुई, इस बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।

नुस्खा-ए-दिलकश

भीमसेन कृत 'नुस्खा-ए-दिलकश' औरंगजेब के शासनकाल के लिए और विशेषकर दक्षिण में मराठों, गोलकुण्डा, बीजापुर और अहमदनगर आदि के विरुद्ध मुगल सैनिक अभियानों की विस्तृत और प्रामाणिक जानकारी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। दक्षिण में ही भीमसेन शोलापुर में दतिया के राजा दलपतराव की सेवा में आया था। इसलिए मुगलों का साथ देने वाले और मुगल सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले बुन्देला राजाओं के प्रति भी उसका ध्यान आकृष्ट हुआ था। यही कारण है कि जहाँ एक ओर वह दतिया के दलपतराव बुन्देला के मराठों के विरुद्ध अभियानों में शामिल होने के विशद उल्लेख करता है, वहाँ वह प्रसंगवश पन्ना के महाराजा छत्रसाल बुन्देला और ओरछा के उदोतसिंह की भी इधर-उधर चर्चा कर बैठता है। उदाहरण के लिए, छत्रसाल सम्बन्धी उसके दो उद्धरण ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इनमें से एक तो छत्रसाल की शिवाजी से भेंट के बारे में है और दूसरा औरंगजेब द्वारा छत्रसाल और उनके पुत्रों को मनसब देकर उन्हें पटाने के प्रयत्नों से संबंधित है। छत्रसाल और शिवाजी की भेंट सन् १६८७ के अन्तिम महीने में ही कभी हुई थी। इस भेंट का एकमात्र समकालीन उल्लेख भीमसेन के 'नुस्खा-ए-दिलकश' में ही है। औरंगजेब ने अपनी मृत्यु (२० फरवरी १७०७) के कुछ ही पहले १ फरवरी, १७०७ ई० को छत्रसाल को ४ हजारी मनसब देकर उन्हें शान्त करना चाहा था। उसने उनके पुत्र हिरदेशाह और पदमसिंह को भी क्रमश: एक हजार, ५ सदीजात और १००० सवार और एक हजार ५ सदीजात और ५०० सवार के मनसब प्रदान किये थे। भीमसेन का छत्रसाल को मनसब दिये जाने का यह उल्लेख भी एकदम समकालीन होने से विशेष महत्वपूर्ण है। वैसे इसकी पुष्टि १ जनवरी, १७०७ के एक मुगल अखबार से भी होती है।

ओरछा के बुन्देला राज्य के बारे में भी भीमसेन हमें कई प्रमाणिक सूचनायें देता है। उदाहरण के लिए वह हमें सूचित करता है कि ओरछा के राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु (१६८६-८७) के पश्चात् उसका ४ वर्ष का पुत्र भगवन्तसिंह ओरछा की गद्दी पर बैठा और औरंगजेब ने उसे राजा का खिताब और एक हजारी मनसब देकर सम्मानित किया, किन्तु इस भगवन्तसिंह की मृत्यु गद्दी पर बैठने के एक ही वर्ष के भीतर हो गई और विवश होकर जसवन्त सिंह की माता रानी अमरकुंवर ने ओरछा राज्यवंश के ही ठाकुर प्रतापसिंह के पुत्र उदोतसिंह को गोद ले लिया। भीमसेन के अनुसार प्रतापसिंह तब ओरछा राज्य के ही अन्तर्गत एक ही गाँव में फौजदार के अधीन सेना में कार्य करते हुए निर्धन अवस्था में रह रहे थे। किन्तु उनका पुत्र उदोतसिंह ऊँचे कद का सुन्दर बलिष्ठ तरुण था। इसलिए ही संभवत: रानी अमरकुंवर ने उसे गोद लिया था। यहाँ स्मरण रहे कि उदोतसिंह बुन्देलखण्ड भर में पूजित जननायक लाला हरदौल का प्रपौत्र था। भीमसेन उदोतसिंह की वीरता और योग्यता का उल्लेख करता हुआ उसके द्वारा औरंगजेब के दक्षिण के अभियानों में भाग लेने के संक्षिप्त विवरण भी देता है।

भीमसेन ने अपने संरक्षक दतिया के राजा दलपतराव के बारे में सबसे अधिक और विशद सूचनायें दी हैं, जो स्वाभाविक ही था। औरंगजेब के राज्यकाल के अन्तिम २० वर्षों में मराठों के विरुद्ध जो मुगल सैनिक अभियान हुए थे, उनमें दलपतराव ने अद्भुत शौर्य, सामरिक सूझ-बूझ और बादशाह के प्रति अपनी अडिग भक्ति का प्रदर्शन किया था, जिसके फलस्वरूप उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते औरंगजेब के राज्यकाल के अन्त तक (१७०७ ई०) तीन हजारी का हो गया था। भीमसेन मुगलों के उपरोक्त सैनिक अभियानों में दलपतराव के

भाग लेने के विरुद्ध उल्लेख करता है। इनमें शहजादा कामबख्श और जुल्फिकार की कमान में जिजी पर जो चढ़ाई की गई थी, वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। दलपतराव इस चढ़ाई में था और उसके सम्बन्ध में भीमसेन ने जो सूचनायें दी है, वे महत्वपूर्ण होने के साथ ही मनोरंजक भी है। उदाहरण के लिए, जिजी के घेरे के समय ऐसी अफवाह उड़ गयी कि औरंगजेब की मृत्यु हो गयी है। इस पर शाहजादा कामबख्श ने वजीर आसदखां और उसके पुत्र जुल्फिकार को बन्दी बना कर बादशाहत प्राप्त करने की सोची। उसके इरादों का पता लगने पर जुल्फिकार और आसदखां ने उसके पड़ाव को घेर लिया। दलपतराव भी उनके साथ था। कामबख्श अपने पड़ाव में हलचल सुनकर अपने हरम से जैसे ही बाहर निकला, वैसे ही आसफ खां के कुछ सैनिकों ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर नंगे पैर ही उसे आसद खां के पास घसीटकर ले जाना चाहा। दलपतराव से यह नहीं देखा गया, उसने तुरन्त अपना हाथी आगे बढ़ाया और क्रुद्ध सैनिकों को भगाकर कामबख्श को अपने हौदे में बैठाकर आसदखां के पास ले आया। जिजी में संताजी घोरपड़े से जुल्फिकार का जो भयंकर युद्ध हुआ था, भीमसेन ने उसे स्वयं देखा था। उसमें दलपतराव ने मराठों का जो जमकर मुकाबला किया था और उन्हें बार-बार पीछे खदेड़ दिया था, उसका भीमसेन ने बड़े गर्व से उल्लेख किया है। वह तो यहां तक लिखता है कि दलपतराव के नेतृत्व में बुन्देलों की हरावली दस्ते ने ही जिजी के सामने पड़ी हुई मुगल सेना की छावनी को बचा लिया। मुगलों की आर्थिक स्थिति सोचनीय हो जाने पर दलपत राव ने अपने साथ के सोने-चांदी के कोष को, जिसका कि मूल्य तब लगभग चालीस हजार रुपये था, इस्तेमाल कर लेने का आग्रह किया था। संक्षेप में भीमसेन के उल्लेखों के अनुसार दलपतराव ने जिजी की विजय (जनवरी, १६९८ ई०) में बहुत बढ़-चढ़कर भाग लिया था और आशा की जाती थी उसके मनसब में वृद्धि होगी। पर जैसा कि भीमसेन हमें सूचित करता है, जिस दिन बादशाह के पास जिजी विजय की खबर पहुँची, उसी दिन दलपतराव के शत्रुओं का भी एक पत्र उसके सामने पेश हुआ, जिसमें शिकायत की गई थी कि राव के अधिकारियों ने उसके पुत्र रामचन्द्र की मां की हत्या कर दी है और उसके ७० कर्मचारियों को दीवाल पर टांगकर परगना एरच पर अधिकार कर लिया है। इस पर औरंगजेब ने कुपित होकर दलपतराव के मनसब में से ५०० जात कम कर दिये और आगरे के नाजिम इतिक़ाद खां को मामले की जांच करने के आदेश भेज दिये। भीमसेन के अनुसार रामचन्द्र दलपतराव का ज्येष्ठ पुत्र था। दलपतराव रामचन्द्र और उसकी माता से किन्हीं कारणों के रुष्ट हो गया था और उसने रामचन्द्र को दतिया राज्य के

उत्तराधिकार से वंचित कर दिया था। इस पर रामचन्द्र ने छत्रसाल से पिता के विरुद्ध सहायता मांगी। पर उस ओर से निराश होकर वह इटावा और एरच के फौजदार खैरन्दश खां से सांठ-गांठ करने लगा और उसने अपने पिता दलपतराव पर अनुचित आरोप लगाते हुए औरंगजेब के सामने एक शिकायत पत्र भी प्रस्तुत किया था।

संक्षेप में, भीमसेन के 'नुस्खा-ए-दिलकश' में उपरोक्त किस्म के अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उल्लेख यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उन सबके विवरण से लेख का कलेवर न बढ़ाकर अन्त में इतना कहना ही काफी होगा कि यह ग्रन्थ औरंगजेबकालीन बुन्देलखण्ड के इतिहास के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण समकालीन स्रोत ग्रन्थ है।

———

बुन्देलखण्ड का सीमांकन

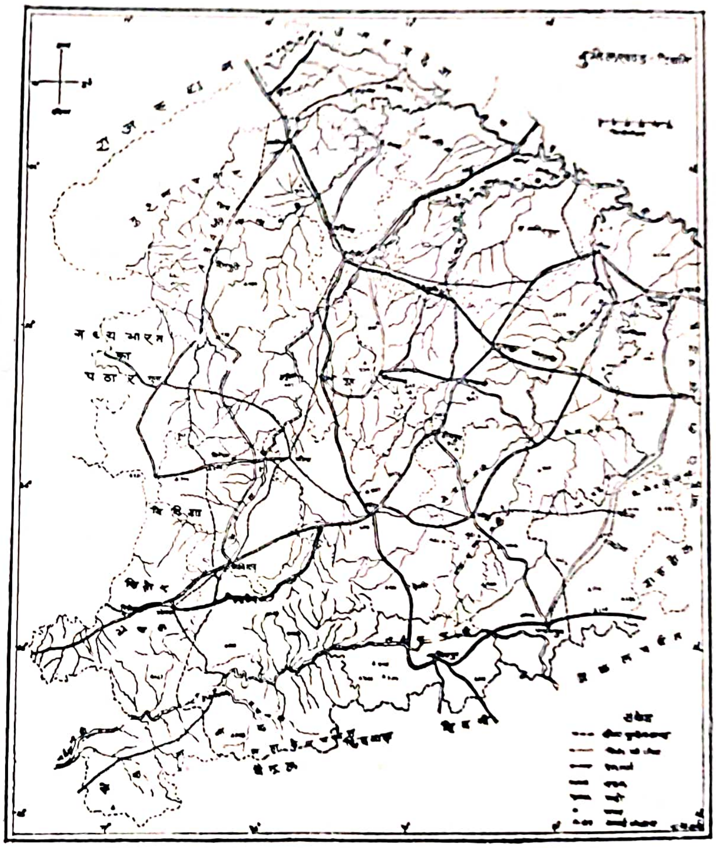
डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

सीमांकन से मेरा तात्पर्य किसी ऐसी कृत्रिम रेखा खींचने से नहीं है, जो किसी राजनीतिक और विधिविहित दृष्टिकोण से नियमित की गई हो; वरन् ऐसे प्राकृतिक सीमान्त से है, जो उस क्षेत्र के ऐतिहासिक परिवेश, संस्कृति और भाषा के अद्भुत ऐक्य को सुरक्षित रखते हुए उसे दूसरे जनपदों से अलग करता हो। राजनीतिक भूगोल के विद्वानों ने सीमान्त और सीमा के अंतर को भली भाँति स्पष्ट किया है। भौगोलिक सरणियों के प्रति मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं है, फिर भी जनपद की एकरूपता के अध्ययन में उसकी प्राकृतिक विशेषताएँ—स्थिति, धरातलीय बनावट, जलवायु आदि सहायक होती हैं। प्रत्येक जनपद भौगोलिक के साथ-साथ ऐतिहासिक-राजनीतिक, सांस्कृतिक और भाषिक इकाई भी होता है। इस दृष्टि से सीमांकन के तीन आधार प्रमुख हो जाते हैं—भू-आकारिक, प्रजातीय और कृत्रिम। भू-आकारिक आधार पर सीमा का निर्धारण पर्वत, नदी, झील आदि से होता है, क्योंकि वे अधिक स्थायी अवरोधक होते हैं। उदाहरण के लिए, बुन्देलखण्ड के दक्षिण में महादेव, मैकल ऐसे पर्वत हैं; जिनको पार करना प्राचीन काल में प्रत्यंत कठिन था और उत्तर-पश्चिम में भी चम्बल के खारों और बेहड़ों की एक प्राकृतिक रुकावट विद्यमान थी। प्रजातीय आधार में जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म अर्थात् पूरा सांस्कृतिक वातावरण समाहित है। कभी-कभी जनपद की सांस्कृतिक इकाई भू-आकारिक सीमा को पार कर जाती है, किन्तु उसके कुछ ठोस कारण होते हैं। कृत्रिम आधार से मेरा तात्पर्य उन सीमाओं से है, जिन्हें व्यक्ति राजनीतिक सुविधा के लिए स्वयं खींचता है अथवा जो दो भूभागों के बीच समझौते या संधि से अंकित की जाती हैं। बुन्देलखण्ड के सीमांकन में इस आधार का महत्व नहीं है।

सीमांकन के प्रयत्न

बुन्देलखण्ड के सीमांकन के अनेक प्रयत्न मिलते हैं, जिनके विवरण और

बुन्देली जनपद



विश्लेषण से भी एक स्पष्ट स्वरूप बिम्बित होना स्वाभाविक है। भू-आकारिक सीमांकन नये नहीं है, किन्तु भौतिक आधार पर निर्धारण नवीन होना संभव है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता एस०एम० अली ने पुराणों के आधार पर विन्ध्यक्षेत्र के तीन जनपदों—विदिशा, दशार्ण एवं करुष की स्थिति का परिचय दिया है। उन्होंने विदिशा का ऊपरी बेतवा के बेसिन से, दशार्ण का धसान और उसकी प्रमुख धाराओं की गहरी घाटियों द्वारा चीरा हुआ सागर प्लेटो तक फैले प्रदेश से तथा करुष का सोन-केन नदियों के बीच के समतलीय मैदान से समीकरण किया है। इसी प्रकार त्रिपुरा जनपद जबलपुर के पश्चिम में १० मील के लगभग ऊपरी नर्मदा की घाटी तथा जबलपुर, मण्डला और नरसिंहपुर जिलों के कुछ भागों का प्रदेश माना है।[२] वस्तुतः यह बुन्देलखण्ड की सीमा-रेखाएं खींचने का प्रयत्न नहीं है, किन्तु इससे यह पता चलता है कि उस समय बुन्देलखण्ड किन जनपदों में बँटा था। इतिहासकार जयचंद्र विद्यालंकार ने ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टियों को संतुलित करते हुए बुन्देलखण्ड को कुछ रेखाओं में समेटने का प्रयत्न किया है—'(विन्ध्यमेखला का) तीसरा प्रदेश बुन्देलखण्ड है जिसमें बेतवा (वेत्रवती), धसान (दशार्णा) और केन (शुक्तिमती) के काँठे, नर्मदा की उपरली घाटी और पचमढ़ी से अमरकंटक तक ऋक्ष पर्वत का हिस्सा सम्मिलित है। उसकी पूरबी सीमा टोंस नदी है।'[३] यह सीमांकन पुराणों द्वारा निर्देशित जनपदों की सम्मिलित रेखाओं के बहुत निकट है। वर्तमान भौतिक शोधों के आधार पर बुन्देलखण्ड को एक भौतिक क्षेत्र घोषित किया गया है और उसकी सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की गई हैं—'वह क्षेत्र जो उत्तर में यमुना, दक्षिण में विन्ध्य प्लेटो की श्रेणियों, उत्तर-पश्चिम में चम्बल और दक्षिण-पूर्व में पन्ना-अजयगढ़ श्रेणियों से घिरा हुआ है, बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है। उसमें उत्तर प्रदेश के चार जिले—जालौन, झाँसी, हमीरपुर और बाँदा तथा मध्यप्रदेश के चार जिले—दतिया, टीकमगढ़, छतरपुर और पन्ना के अलावा उत्तर-पश्चिम में भिण्ड जिले की लहर और ग्वालियर जिले की भाण्डेरा तहसीलें भी सम्मिलित हैं।'[४] ये सीमारेखाएँ भू-संरचना की दृष्टि से उचित कही जा सकती हैं, किन्तु इतिहास, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से बुन्देलखण्ड बहुत विस्तृत प्रदेश है।

जनपद भूखण्ड की एक ऐसी इकाई है, जो उसके निवासियों के विविध संस्कारों की समानता और एकता से निर्मित होती है। संभवतः इसी वास्तविकता के आधार पर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्राचीन काल के जनपद की एक सांस्कृतिक भौगोलिक इकाई की संज्ञा से अभिहित किया है।[५] वैसे नर्मदा और चम्बल घाटी तथा अटवी की सभ्यता बहुत पुरानी है, किन्तु जन-

पदीय चेतना का उदय रामायण और महाभारत काल से हो चुका था। महाभारत और जनपद-काल का चेदि इसी प्रकार का जनपद था, जिसका समीकरण पार्जिटर ने वर्तमान बुन्देलखण्ड से किया है। उनके मतानुसार चेदि देश उत्तर में यमुना के दक्षिणी तट से दक्षिण में मालवा के पठार और बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों तक तथा दक्षिण-पूर्व में चित्रकूट के उत्तर-पूर्व में बहने वाली कार्वी नदी से उत्तर-पश्चिम मे चम्बल नदी तक प्रसरित विस्तृत प्रदेश का नाम था।[६] डा० वी०वी० मिराशी के अनुसार मध्यकाल में उसका विस्तार नर्मदा के तट तक हो गया था। अधिकांश इतिहासकारों ने इस सीमांकन को सही माना है। कुछ इतिहासकार प्राचीन जनपदों के सीमांकन का आधार सांस्कृतिक मानते हैं; लेकिन महाभारतकालीन युद्धों से प्रकट है कि जनपद की सीमाओं का विस्तार राजा और सेना पर निर्भर होता था, संस्कृति के प्रचार-प्रसार पर नहीं। अतएव उसे किस सीमा तक सांस्कृतिक माना जाय, एक टेढ़ा प्रश्न है। फिर भी इन जनपदों में लोकरुचि मूल्यवान समझी जाती थी और गणराज्यों में गण-परिषद् राजा को पदच्युत कर सकती थी, इस दृष्टि से जनपद की लोकरुचि और लोकसंस्कृति का प्रतिनिधि प्रदेश माना जा सकता है।

जनपदों के पतन के बाद सांस्कृतिक आधार निर्बल पड़ता गया और राजनीतिक आधार प्रधान होता गया। चन्देलकाल में जेजाभुक्ति (जिसका समीकरण बुन्देलखण्ड से किया गया है) की सीमाएँ वर्तमान बुन्देलखण्ड से विस्तृत थीं। चंदेलों के राज्य में ऐसे भी क्षेत्र थे, जो भिन्न-लोक संस्कृति के थे और जिनकी लोकभाषा बुन्देली न होकर बघेली, कन्नौजी और ब्रजी थी। इसी प्रकार महाराज छत्रसाय बुन्देला की राज्य-सीमा को यथावत् बुन्देलखण्ड की सीमा मानना उचित नहीं है, जबकि इण्डियन गजेटियर्स में उन्हीं को स्वीकार किया गया है। इतिहासकारों ने भी सीमांकन को दुहराया है। दीवान प्रतिपालसिंह के अनुसार पूर्व में टोंस और सोन नदियां अथवा बघेलखण्ड या रीवा राज्य है तथा बनारस के निकट बुन्देला नाले तक सिलसिला चला गया है। पश्चिम में बेतवा, सिंध और चम्बल नदियाँ, विन्ध्याचल श्रेणी तथा मालवा, सिंधिया का ग्वालियर राज्य और भोपाल राज्य है तथा पूर्वी मालवा इसी में आता है। उत्तर में यमुना और गंगा नदियाँ अथवा इटावा, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर तथा बनारस के जिले हैं, दक्षिण में नर्मदा नदी और मालवा है।[७] दीवान जू ने बुन्देलखण्ड की बृहत्तर मूर्ति की रचना की है। पं० गोरे लाल तिवारी ने निर्णय लिया है—'इस भूभाग के उत्तर में यमुना का प्रचण्ड प्रवाह, पश्चिम में मंद-मंद बहने वाली चम्बल और सिन्ध नदियाँ, दक्षिण में नर्मदा नदी और पूर्व में बघेलखण्ड है।'[८] वास्तव में इन सीमा-निर्धारणों में

ऐतिहासिक-राजनीतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख रहा है। आगे चलकर प्रान्तीय राजनीति के आधार बुन्देलखण्ड की इकाई को टुकड़ों में विभाजित किया गया है।

प्रसिद्ध पुरातत्वविद् कनिंघम ने भी सीमा-निर्धारण का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार 'बुन्देलखण्ड के अधिकतम विस्तार के समय इसमें गंगा और यमुना का समस्त दक्षिणी प्रदेश जो पश्चिम में बेतवा नदी से पूर्व में चंदेरी और सागर के जिलों सहित विन्ध्यवासिनी देवी के मंदिर तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी के मुहाने के निकट बिल्हारी तक प्रसरित था, रहा है।'[९] लेकिन इस सीमांकन में चंदेलकालीन मूर्तिकला और स्थापत्य का आधार ही मुख्य प्रतीत होता है। इतिहासकार वी० ए० स्मिथ ने भी इसी सीमा को मान्यता प्रदान की है।[१०] परन्तु उनका आधार भी चन्देलों की राज्यसीमा है, जो बुन्देलखण्ड का चित्र खड़ा करती है।

जनपदीय भाषा या बोली जनपद की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना की माध्यम होती है। लोकसंस्कृति गतिशील होती है, इलिए उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन स्वाभाविक है; लेकिन लोकभाषा जनपद के इतिहास और संस्कृति की सतत् साक्षी होती है, इसलिए जनपद की सीमाएँ लोकभाषा के क्षेत्र से निर्धारित करना उचित है। सर्वप्रथम विलियम कैरे ने, जो १७९३ ई० में भारत आए थे, अपने भाषा-सर्वेक्षण के प्रतिवेदन मे ३३ भारतीय भाषाओं की सूची में बुन्देलखण्डी पर भी विचार किया था और उसका नमूना भी दिया था।[११] सन् १८३८ से १८४३ ई० के बीच मेजर राबर्ट लीच ने बुन्देलखंड की हिन्दवी बोली के व्याकरण का निर्माण किया था।[१२] उपरान्त सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने बुन्देलखण्डी पर महत्वपूर्ण कार्य किया और प्रत्येक क्षेत्र की बुन्देली भाषा पर विचार करते हुए बुन्देली की सीमाएँ खोजीं। उनके अनुसार बुन्देली भाषा का क्षेत्र बुन्देलखण्ड के राजनीतिक क्षेत्र से मिलता-जुलता नहीं है। वह उत्तर में चम्बल नदी के उस पार आगरा, मैनपुरी, इटावा जिलों के दक्षिणी भागों तक; पश्चिम में चम्बल नदी तक न होकर पूर्वी ग्वालियर तक; दक्षिण में सागर और दमोह तक ही नहीं, वरन् भोपाल के पूर्वी भागों, नर्मदा के दक्षिण में नरसिंहपुर, होशंगाबाद, सिवनी जिलों तथा बालाघाट और छिंदवाड़ा के कुछ क्षेत्रों तक फैला हुआ है। पूर्व में बांदा की भाषा बुन्देली नहीं है।[१३] श्री कृष्णानंद गुप्त ने इसी सीमांकन का अनुसरण किया है।[१४] किन्तु डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल ने और भी विस्तार कर दिया है। उन्होंने उत्तर में पूरा मुरैना जिला, पश्चिम में शिवपुरी और गुना के पूरे जिले तथा दक्षिण में बैतूल जिला अर्थात् तापती नदी की तटीय सीमा तक का पूरा क्षेत्र बुन्देली क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया है।[१५] इसी प्रकार डा० महेश प्रसाद जायस-

वाल ने मध्यप्रदेश के दुर्ग जिले का कुछ भाग, उत्तर प्रदेश के बांदा जिले का कुछ भाग और महाराष्ट्र के चांदा, बुल्डाना, भंडारा, अकोला जिलों के भागों को भी समाविष्ट कर लिया है।[१६] भाषाविद् डा० उदय नारायण तिवारी, डा० हरदेव बाहरी आदि ने ग्रियर्सन की सीमाओं को ही मान्यता दी है।[१७] वास्तव में, ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के बाद कोई दूसरा योजनाबद्ध प्रयत्न नहीं किया गया।

ग्रियर्सन के सर्वेक्षण पर ध्यान दिया जाय, तो उस योजना में तीन प्रकार के नमूनों का जिला-अधिकारियों, राजनीतिक प्रतिनिधियों आदि के द्वारा संग्रह, ब्रिटिश तथा बाइबिल सोसाइटी के मिशनरियों और स्थानीय मिशनरियों के द्वारा अनुवाद, अनुवाद के नमूने के लिए बाइबिल के 'प्राडीगल सन' की कथा का अंश, समस्त नमूनों में से महत्वपूर्ण नमूने का चुनाव[१८] आदि कुछ ऐसी कठिनाइयां थीं, जिनसे सही निर्णयों तक पहुँचना किस सीमा तक संभव हो सकता है, विचारणीय विषय है। स्वयं गियर्सन ने एक कठिनाई का उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया है।[१९] वस्तुत: नमूनों को मंगाकर और उनका चयन कर किसी भाषा का अध्ययन उपयोगी नहीं है, वरन् भाषाविदों को उसी क्षेत्र में जाकर सर्वेक्षण करना आवश्यक है।

समशीला इकाई की खोज

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक, सांस्कृतिक और भाषिक इकाइयों में अद्‌भुत समानता है। भूगोलवेत्ताओं का मत है कि बुन्देलखण्ड की सीमाएं स्पष्ट हैं और भौतिक तथा सांस्कृतिक रूप में निश्चित हैं। वह भारत का एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है, जिसमें न केवल संरचनात्मक एकता, भौम्याकार की समानता जलवायु की समता है, वरन् उसके इतिहास, अर्थव्यवस्था और सामाजिकता का आधार भी एक ही है। वास्तव में समस्त बुन्देलखण्ड में सच्ची सामाजिक, आर्थिक और भावात्मक समता है।[२०] यदि हम भौगोलिक दृष्टि से इस जनपद का अध्ययन करें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि यह एक भौगोलिक प्रदेश है। यहाँ हम भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक दृष्टियों को एक साथ लेकर सीमांकन का प्रयास करेंगे।

बुन्देलखण्ड के उत्तर में यमुना नदी है और इस सीमारेखा को भूगोलविदों, इतिहासकारों, भाषाविदों आदि सभी ने स्वीकार किया है। पश्चिमी सीमा चम्बल नदी को भी अधिकांश विद्वानों ने माना है, परन्तु ऊपरी चम्बल इस प्रदेश से बहुत दूर हो जाती है और निचली चम्बल इसके निकट पड़ती है। वस्तुत: मध्य और निचली चम्बल के दक्षिण में स्थित मध्यप्रदेश के मुरैना और भिण्ड जिलों में बुन्देली संस्कृति और भाषा का मानक रूप समाप्त-सा हो जाता

है। चम्बल के उस पार इटावा, मैनपुरी, आगरा जिलों के दक्षिणी भागों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। भाषा और संस्कृति की दृष्टि से ग्वालियर और शिवपुरी का पूर्वी भाग बुन्देलखण्ड में आता है और साथ ही उत्तर प्रदेश के जालौन जिले से लगा हुआ भिण्ड का पूर्वी हिस्सा (लहर तहसील का दक्षिणी भाग) भी, जिसे भूगोलविदों ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सम्मिलित किया है। अतएव इस प्रदेश की उत्तर-पश्चिम सीमा में मुरैना और शिवपुरी के पठार तथा चम्बल-सिंध जलविभाजक, जोकि उच्च समभूमि है, आते हैं। वास्तव में, यह सीमा सिन्ध के निचले बेसिन तक जाती है और वह स्थायी अवरोधक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि चम्बल और कुमारी नदियों के खारों और बेहड़ों तथा दुर्गम भागों के कारण एवं मुरैना और शिवपुरी के घने जंगलों के होने से बुन्देली भाषा और संस्कृति का प्रसार उस पार नहीं जा सका। बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा पर ऊपरी बेतवा और ऊपरी सिन्ध नदियाँ तथा सीहोर से उत्तर में गुना और शिवपुरी तक फैला मध्यभारत का पठार है। मध्यभारत के पठार के समानान्तर विन्ध्यश्रेणियाँ भोपाल से लेकर गुना तथा शिवपुरी के कुछ भाग तक फैली हुई हैं और अवरोधक का कार्य करती हैं।[२१] इस प्रकार पश्चिम में रायसेन जिले की रायसेन और गौहरगंज तहसीलों का पूर्वी भाग; विदिशा जिले की विदिशा, बासौदा और सिरोंज तहसीलों के पूर्वी भाग, जिनकी सीमा बेतवा बनाती है; गुना जिले की अशोकनगर (पिछोर) और मुंगावली तथा शिवपुरी की पिछोर और करैरा तहसीलें, जिनकी सीमा पर सिंध बनाती है; बुन्देलखण्ड के पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र हैं। इनमें विदिशा और पद्मावती (पवांया) के क्षेत्र इतिहास प्रसिद्ध रहे हैं। विदिशा दशार्णी संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। वैदिश और पद्मावती के नागों की संस्कृति बुन्देलखण्ड के एक बड़े भूभाग में प्रसरित रही है। चंदेलों के समय वे इस जनपद के अंग रहे हैं। सिद्ध है कि इन क्षेत्रों की संस्कृति और भाषा जितनी इस जनपद से मेल खाती है, उतना ही उनका प्राकृतिक परिवेश और वातावरण।

भौतिक भूगोल में बुन्देलखण्ड की दक्षिणी सीमा विन्ध्य पहाड़ी श्रेणियाँ बताई गई हैं, जो नर्मदा नदी के उत्तर में फैली हुई हैं।[२२] लेकिन संस्कृति और भाषा की दृष्टि से यह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सागर प्लेटो के दक्षिण-पूर्व से जनपदीय संस्कृति और भाषा का प्रसार विन्ध्यश्रेणियों के दक्षिण में हुआ है। इतिहासकारों ने नर्मदा नदी को मान लिया है, संभवत: छत्रसाल बुन्देला की राज्य-सीमा को केन्द्र में रखकर; लेकिन जनपदीय संस्कृति और भाषा विन्ध्यश्रेणियों और नर्मदा नदी के प्राकृतिक अवरोधक पार कर होशंगाबाद और नरसिंहपुर जिलों तक पहुँच गई है। भूगोलवेत्ता सर थामस होल्डिच के अनुसार सभी प्राकृ-

तिक तत्वों में एक निश्चित जलविभाजक रेखा, जो एक विशिष्ट पर्वतश्रेणी द्वारा निर्धारित होती है, अधिक स्थायी और सही होती है।[२३] अतएव प्रदेश की दक्षिणी सीमा महादेव पर्वतश्रेणी (गोंडवाना हिल्स) और दक्षिण-पूर्व में मैकल पर्वतश्रेणी उचित ठहरती है। इस आधार पर होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलें तथा नरसिंहपुर का पूरा जिला बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आता है। कुछ भाषाविदों ने इन क्षेत्रों के दक्षिण में बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, बालाघाट और मंडला जिलों अथवा उनके कुछ भागों को भी सम्मिलित कर लिया है, पर उनकी भाषा शुद्ध बुन्देली नहीं है और न ही उनकी संस्कृति बुन्देलखण्ड से मेल खाती है। इतना अवश्य है कि बुन्देली संस्कृति और भाषा का यत्किंचित प्रभाव उन पर पड़ा है। ऊंचाई पर स्थित होने के कारण वे पृथक हो गए हैं। महादेव-मैकल पर्वतश्रेणियां उन्हें कई स्थलों पर अलग करती हैं और अवरोधक सिद्ध हुई हैं।

दक्षिणी सीमा के संबंध में एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि विन्ध्यश्रेणियों और नर्मदा नदी को पार कर बुन्देली संस्कृति और भाषा यहां कैसे आई। इस समस्या का उत्तर इतिहास में खोजा जा सकता है। इतिहासकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि भारशिवों (नवनागों) और वाकाटकों के इस क्षेत्र में बसने के कारण दक्षिण के इस भाग का संबंध बुन्देलखण्ड से इतना घनिष्ठ हो गया था कि दोनों मिलकर एक हो गए थे और उस समय इन दोनों प्रदेशों में जो एकता स्थापित हुई थी, वह आज तक बराबर चली आ रही है। साठ वर्षों तक नागों के यहां रहने के इतिहास का यह परिणाम निकला है कि यहां के निवासी भाषा और संस्कृति के विचार से पूरे उत्तरी हो गए हैं।[२४] गुप्तों के समय वाकाटक भी यहां रहे। कुछ विद्वान झांसी जिले के बागाट या बाघाट को, जो बिजौर या बीजौर के पास है, वाकाटकों का आदि स्थान सिद्ध करते हैं, जबकि कुछ इतिहासकार पुराणों में कथित किलकिला प्रदेश का समीकरण पन्ना प्रदेश से करते हुए उसे वाकाटकों की आदि भूमि मानते हैं। वाकाटकों के बाद जेजाभुक्ति के चंदेलों और त्रिपुरी के कलचुरियों के राज्यकाल में भी यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड से जुड़ा रहा। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बुन्देलखंड की दक्षिणी सीमा महादेव पर्वतश्रेणी की गोंड़वाना हिल्स है, जो जबलपुर के पूर्व में मैकल पर्वतश्रेणी से मिल जाती है।

बुन्देलखंड के पूर्व में मेकल पर्वत श्रेणियां, भानरेर श्रेणियां, कैमूर श्रेणियां और निचली केन नदी है। दक्षिण-पूर्व में मेकल पर्वत है, इस कारण नरसिंह पुर जिले के पूर्व में स्थित जबलपुर जिले के दक्षिण-पश्चिमी भाग समतल भाग अर्थात् पाटन और जबलपुर तहसीलों का दक्षिण-पश्चिमी

भाग बुन्देलखंड के अन्तर्गत आ गया है। उनकी भाषा और संस्कृति बुन्देली के अधिक निकट है। किन्तु दमोह पठार के दक्षिण-पूर्व में स्थित भानरेर रेंज पाटन और जबलपुर तहसीलों के उत्तरी और उत्तर-पूर्वी भागों को बुन्देलखंड से विलग कर देती है। भानरेर श्रेणियों के उत्तर-पूर्व में कैमूर श्रेणियां स्थित हैं, जिनके पश्चिम में स्थित पन्ना बुन्देखंड में है और पूर्व में बघेलखंड है। पन्ना जिले की तहसीलों पवई और पन्ना के पूर्व संकरी पट्टी में बुन्देली भाषा और संस्कृति का प्रसार है। टोंस और सोन नदियों के उद्गम का भूभाग दक्षिण-पश्चिम की उस संस्कृति से अधिक प्रभावित है,[२५] जो कि बुन्देलखंड से मिलती-जुलती है। पन्ना जिले के उत्तर में पन्ना-अजयगढ़ की पहाड़ियों का सिलसिला चित्रकूट तक चला गया है। इसलिए बांदा जिले का वह भाग जो छतरपुर जिले के उत्तर-पूर्वी कोने और पन्ना जिले के उत्तरी कोने से बिल्कुल सटा हुआ है, जो उत्तर में गौरिहार (जिला छतरपुर) से लेकर चित्रकूट (जिला-बांदा) तक पहाड़ी क्षेत्र की एक सीमा रेखा बनाता है और जिसके उत्तर में बांदा का मैदानी भाग प्रारम्भ हो जाता है, बुन्देलखंड के अन्तर्गत आता है। बांदा जिले का शेष मैदानी भाग उससे बाहर पड़ जाता है। इस तरह बुन्देलखंड की उत्तर-पूर्वी सीमा निचली केन बनाती है।

भू-संरचना और राजनीति की दृष्टि से बांदा जिला बुन्देलखंड का एक भाग माना गया है, पर उसके अधिकांश भाग की भाषा बुन्देली नहीं है और उसकी संस्कृति बुन्देली संस्कृत से कुछ बातों में भिन्न है। प्राचीन काल में बांदा चेदि में सम्मिलित नहीं था, भारशिवों और नवनागों के साम्राज्य से बाहर था और वाकाटकों की संस्कृति यहां तक पहुंच नहीं पाई; किन्तु उसका कालिंजर से लेकर चित्रकूट तक का भाग बहुत प्राचीन समय से ही इस संस्कृति का अंग रहा है। बांदा के उत्तर-पूर्व में चिल्ला नामक ग्राम में आल्हा-ऊदल का निवास खोजा गया है।[२६] विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर बुन्देलों का तीर्थस्थल रहा है। चंदेलों के समय बांदा का अधिकांश भाग बुन्देली प्रभाव में रहा और बुन्देलों ने भी टोंस नदी तक अपना शासन फैलाया। संभवतः इसी कारण बांदा जिले के उत्तर-पश्चिमी भाग में भी बुन्देली भाषा और संस्कृति की पैठ है। इस प्रकार, बुन्देलखंड के उत्तर-पूर्व में निचली केन नदी की तटीय पट्टी का क्षेत्र, बांदा जिले की नरैनी और करबी तहसीलों का क्रमशः दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भाग सम्मिलित है। पूर्व में पन्ना और दमोह जिले तथा दक्षिण-पूर्व में जबलपुर जिले की पाटन और जबलपुर तहसीलों का क्रमशः दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भाग, जो मैकल श्रेणियों तक चला गया है, बुन्देलखंड में आता है। इसके अतिरिक्त सोन और टोंस की उद्गम घाटी, जो नर्मदा की तरफ दक्षिण की ओर खुलती है और जिसमें पाटन,

जबलपुर, सिहोरा और मुड़वारा तहसीलों की लम्बी सी पट्टी का क्षेत्र है, बुन्देलखंड के अन्तर्गत है।

उपर्युक्त आधार पर बुन्देलखंड प्रदेश में निम्नलिखित जिले और उनके भाग आते हैं और उनसे इस प्रदेश की एक भौगोलिक, भाषिक एवं सांस्कृतिक इकाई बनती है—

(१) उत्तर प्रदेश के जालौन, झाँसी, ललितपुर, हमीरपुर जिले और बाँदा जिले की नरैनी एवं करवी तहसीलों का दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भाग।

(२) मध्य प्रदेश के पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, सागर, दमोह, नरसिंहपुर जिले तथा जबलपुर जिले की पाटन और जबलपुर तहसीलों का दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिमी भाग; होशंगाबाद जिले की होशंगाबाद और सोहागपुर तहसीलें; रायसेन जिले की उदयपुर, सिलवानी, गैरतगंज, बेगमगंज, बरेली तहसीलें एवं रायसेन, गौहरगंज तहसीलों का पूर्वी भाग; विदिशा जिले की कुरवई तहसील और विदिशा, बासौदा, सिरोंज तहसीलों के पूर्वी भाग; गुना जिले की अशोक नगर (पिछोर) और मुंगावली तहसीलें; शिवपुरी जिले की पिछोर और करैरा तहसीलें, ग्वालियर की पिछोर, भांडेर तहसीलें और ग्वालियर गिर्द का उत्तर-पूर्वी भाग; भिंड जिले की लहर तहसील का दक्षिणी भाग।

जिलों को सामने रखकर समझने में भले ही कुछ उलझन-सी लगे, पर प्रदेश की सीमारेखाएं बिल्कुल स्पष्ट और अधिकतर प्राकृतिक हैं, जैसी मानचित्र में अंकित की गई है। उत्तर में यमुना नदी; दक्षिण में महादेव पर्वत (गोंड़वाना श्रेणियां); उत्तर-पूर्व में निचली केन नदी, पूर्व में कैमूर और भानरेर श्रेणियां, दक्षिण-पूर्व में मेकल पर्वत श्रेणी; उत्तर-पश्चिम में चम्बल और सिन्ध नदियों के बीच का जलविभाजक तथा मुरैना और शिवपुरी के पठार, पश्चिम में ऊपरी बेतवा और सिन्ध नदियां तथा मध्यभारत का पठार एवं विन्ध्यश्रेणियां। यह सुस्पष्ट और ऊपरी प्रकृत सीमा सभी दृष्टियों से एक जनपदीय इकाई का निश्चित रेखांकन करती है और मैं समझता हूं कि यह सीमांकन बुन्देलखंड के सीमा-विवादों में उलझे शोधकर्त्ताओं को एक निश्चित दिशा देगा।

संदर्भ-संकेत :

————

१. सिस्टैमैटिक पॉलिटिकल ज्योग्रफी, एच जे० डे ब्लिज, १९६६, पृ० २१२।
२. दि ज्योग्रफी ऑफ दि पुरानाज, एस० एम० अली, १९६६, पृ० १५९-६०।
३. भारतभूमि और उसके निवासी, जयचन्द्र विद्यालंकार, १९३१, पृ० ६५।
४. इन्डिया : ए रीजनल ज्योग्रफी, सं० आर० एल० सिंह, १९७१, पृ० ५९७।
५. मार्कण्डेय पुराण (एक सांस्कृतिक अध्ययन), वासुदेव शरण अग्रवाल, १९६१, पृ० १५२।
६. मार्कण्डेय पुराण (अंग्रेजी अनुवाद), एफ० ई० पार्जिटर, पृ० ३५९।
७. बुन्देलखंड का इतिहास प्रथम भाग, दीवान प्रतिपाल सिंह, सं० १९८५, पृ० ५।
८. बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल तिवारी, सं० १९९०, पृ० १।
९. दि एनशिएंट ज्योग्राफी आव इन्डिया, ए० कनिंघम, १९६३, पृ० ४०६ अनूदित।
१०. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग ३०, पृ० १३०।
११. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खंड १, भाग १, अनु० उदय नारायण तिवारी, १९५९, भूमिका, पृ० २४।
१२. वही, पृ० २९।
१३. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इन्डिया, वाल्यूम ९, ग्रियर्सन, पृ० ८६।
१४. बुन्देलखंडी भाषा साहित्य, कृष्णानंद गुप्त, १९६०, पृ० २।
१५. बुन्देली का भाषाशास्त्रीय अध्ययन, डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, १९६३, पृ० ४ एवं भाषाक्षेत्र का मानचित्र।
१६. ए लिंग्विस्टिक स्टडी आव बुन्देली, डा० एम० पी० जायसवाल, १९६२, इंट्रोडक्शन, पृ० ३।
१७. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, सं० २०२६, पृ० २५४ एवं हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, १९७० ई०, पृ० ८५।
१८. भारत का भाषा-सर्वेक्षण, खंड १, भाग १, अनु० उदय नारायण तिवारी, १९५९, भूमिका, पृ० ३३-३९।
१९. वही, पृ० ५६।
२०. इन्डिया : ए रीजनल ज्योग्रफी, सं० आर० एल० सिंह, १९७१, पृ० ३६, ६१५, ६२०।
२१. वही, पृ० ५६८। पुराणों में इसे पारियात्र पर्वत कहा गया है।
२२. वही, पृ० ६१५, ६१९।
२३. पॉलिटिकल ज्योग्रफी, पाउण्ड्स, पृ० ८२ में उद्धृत पॉलिटिकल फ्रण्टियर्स एण्ड बाउंडरी मेकिंग, टी० ए० होल्डिच।
२४. अन्धकार-युगीन भारत, डा० काशी प्रसाद जायसवाल, अनु० रामचन्द्र वर्मा, सं० १९९५, पृ० ८४-८५।
२५. इन्डिया : ए रीजनल ज्योग्रफी, सं० आर० एल० सिंह, पृ० ६४४।
२६. आर्केल्यॉजी सर्वे रिपोर्ट्स, वाल्युम २१, ए० कनिंघम, पृ० ८१।

————

शब्द बोलते हैं.

डा० वीरेंद्र 'निर्झर'

[हर शब्द की अपनी कथा है और अपना इतिहास। पैदा होते ही वह यात्रा पर निकल पड़ता है और जहां जाता है, नया वेश अपना लेता है। केवल लोक के कल्याण के लिए। इस स्तम्भ में कुछ बूंदेली शब्दों की यात्रा-कथा कही गई है। भाषाविद् अगले अंक के लिए अपने योगदान देने का कष्ट करें।]

उसार—उत्सारय, उस्सार, स्स >स
"अवै सबरी उसार डरी, सूरज निकर आओ।"
फैली हुई वस्तुओं को व्यस्थित रखना,सफाई करना।

लत्ता—लक्तक, लत्तअ, अअ > आ
"मों दुखिनी के लत्ता नईंयां, कुत्तन झूल डराबें।'
फटा पुराना कपड़ा।

रोरा—लोष्ट, लोट्ठ, लोढ़ा > रोड़ा, ड़ > र
"कऊं की इंट कऊँ को रोरा, भानमती ने कुनबा जोरा"।
इंट-पत्थर के टुकड़े।

खुरपी—क्षुरप्र, खुरप्प, प्प > प, ई का आगम
"खुरपी कों टेंढो बेंट मिलई जात।"
घास काटने, छीलने का औजार।

चौंतरा—चत्वरक, चतुवरक, चवुतरक, चबूतरा, चऊँतरा, अऊँ > ओं
"गांउन गांउन चौतरा, देसन देसन नांव।"
इंटों, मिट्टी आदि से बैठने के लिए बनाया गया चौकोर ऊँचा स्थान।

टिकुली—तिलकी, टिलकी, टिकली,
क > कु—अ,उ की ओर उन्मुख, उच्चारणगत

"टिकुली सेंदुर सें गये तौ का खाबे मेंई बज्जुर परअें।"
कांच या पन्नी की बनी हुई छोटी टिकिया जिसे स्त्रियाँ माथे पर चिपकाती हैं, छोटी बिन्दी।

लबुनिया—लकुट, लगुड, लवुद, ग > व, ड > द, इमा प्रत्यय
"·····लफ लफ जाय लबुदिया सी।" पेड़ से हाल की ही टूटी हुई छड़ी, कम सूखी छड़ी।

भिआने—वि + अहन, विहान, बिहान, बह > भ, ए प्रत्यय
"मइंनन के भिआने बरता।"
सबेरा, भोर, आने वाला कल

लौलइयां—लोलाग्निका, लोलग्गिआ, लैलइयां अ > य, अनुस्वार विपर्यय
"ऊ लौलइयां लगें आओ तो।" दिया बत्ती की वेरा।

कुरा—अंकुर, अ का विर्पयय तथा अनुस्वार का लोप
"कै निरमल दरपन के ऊपर कुरा जमो रजनी को।"
अंखुआ।

———

दो ग़ज़लें

भवानी शंकर

एक

दे रहे हैं कुएं बयान यहां
और मुलजिम है आशमान यहां
हाथ भर की जबान है उनकी
कल जो बैठे थे बेजबान यहां
आदमी दिन ब दिन गिरा नीचे
और ऊपर उठे मकान यहां
कोई पंडित है, कोई मुल्ला है
लोग टुकड़ों में हैं महान यहां
धूप है, फूल हैं, किताबें हैं
हमने खोली है इक दुकान यहां।

दो

इतनी हरामजादी पहले न थीं हवाएं
वे बन गयीं रखैलें, जो थीं पतिव्रताएं।
रिश्तों के एक जंगल का नाम जिन्दगी है
हर शख्स जी रहा है कुछ पेड़ कुछ गुफाएं।
ये धर्म के पुजारी, ये वक्त के मसीहा
जांघों पे लिख रहे हैं मन की सभी कथाएं।

अवकाश

प्रहलाद तिवारी

मैंने क्षण बिताये हैं ताकि रंगीन धूप तुम्हारे चेहरे को
भेदती हुई अचानक लुप्त न हो जाये—
जब कल्पना करता हूँ तुम्हारे सामीप्य की, वय के साथ
बढ़ती तुम्हारी अभिजात्य मनोवृत्ति के साथ मैं महसूस करता हूँ
हमें उन सारे दरवाजों से मुक्त हो जाना चाहिए
जो क्षणअनुक्षण यदाकदा फैल जाते हैं और स्मृति छोड़ जाते हैं
किताब के खुले पृष्ठों के बीच जब मैं शब्दावली के नजदीक पहुँच जाता हूँ
तुम्हारे मेरे बीच एक अवकाश का टुकड़ा फैल जाता है—जिसे न पकड़ पाने का
लोभ अन्ततः मुझे आक्रान्त, अशान्त करता है, अनास्पर्श का बोध
हावी होता जाता है—यह प्रक्रिया स्वयं कितनी कष्टप्रद है
स्मृतिवश कैलेन्डर की तारीखें बदलने लगती हैं और
एक रेल उन पर से गुजर जाती है बिना किसी आहट के
इस प्रक्रिया से गुजरकर मैंने कितनी राहत महसूस की है, नहीं जानता—
जानने की कोशिश भी निरापद नहीं कि
दो अन्तरालों के बीच अवकाश का सुख कितना स्वल्प होता है,
मेरी हथेलियों पर रेखाओं का बनना, बिगड़ना जारी है, हर क्षण पर्वतों का
आकार भी दीर्घकाय होता जाता है
यह क्रम कहाँ रुकेगा मैं नहीं जानता
तुम्हारे देहान्तर के साथ—मैं उन अंधेरी पटरियों पर दौड़ना चाहता हूँ
जिस पर तत्क्षण एक रेल गुजरी थी और एक पुल
उस पर फैलकर मेहरबां की शक्ल में बदल गया था—बस मैंने
अवकाश का वह क्षण
रंगीन धूप के बीच छिपा दिया था और टहलने लगा था—

पसीना है ··पसीना है···

चिरंजीव कुमार अग्रवाल

पसीना है, पसीना है
इसी पर तो धनिकों को जीना है
पसीना बूंद बन टपका
धरा के थाल पर चमका
कि जिसकी चौंधियाहट से
संसार के तिमिर हरते हैं।
इसी एक बूंद पर तो
अमीरों के हजारों पाप पलते हैं
पसीना की कहानी सच
नौजवानों की जवानी है
इसकी कीमत तो गद्दारों को छोड़
सबने जानी है
ये तो हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है
पसीना की कीमत शराब से सस्ती है
किसी को पसीना दुर्गन्ध देता है।
पर मैं कहता हूँ पसीना
देश को कर्तव्य की सौगन्ध देता है
पसीना बहाते-बहाते
कहीं मानव थक न जाये
उस देश का कैसे भला होगा।
जहाँ पसीने पर ही टैक्स लग जाये।

रोजगार की तलाश

प्रमोद दुबे

बासंती पवन का एक झोंका
भर गया तन मन में पुलक
और प्राणों में समीर
भूल गई सुध बुध
खो गई अतीत के सपनों में।
कैसी तरुणाई अँकुआई थी
विगत एक वर्ष
जैसे गया क्षणों में बीत
न साज है न ताज
न नव वधू का शृङ्गार
कैसे हैं प्रियतम
न प्यार की बहार।
झूमतीं थीं कलियाँ
भ्रमर करते थे मधुपान
किन्तु न जाने
कैसी रहसीन कलियाँ हो गईं
जीवन की नव बहार
यूँ ही कहीं डूब गई
मिलिन्द भी न जाने कहाँ उड़ गये
शायद किसी कारखाने में, दफ्तर में
या भूख से विवश होकर
रोजगार की तलाश में

मेघप्रिया

कान्ति खरे

'अब ये नूपुर····पाषाण को रिझाने कभी नहीं बजेंगे····। पत्थर पत्थर ही होता है, देवता नहीं बन सकता। नहीं····नहीं····। दुधमुँहे बच्चों का चीत्कार सुनकर भी, नारियों का सुहाग लुटते देखकर भी जो न पिघला, वह देवता····? वह देवता नहीं····और मैं देवदासी नहीं····।' एक देवता और देवदासी की अनोखी कथा, जो इतिहास की मिसाल बन गई। देवता सबको याद रहे, पर देवदासी को इतिहास तक भूल गया। और उसी देवदासी की अनकही कथा कांति खरे की जुबानी।

बड़ा सा तारा टूटा। वातावरण श्मशान से भी अधिक डरावना था। जलते नर-मांस की दुर्गंध। दूर से आती अर्धमृतों की कराह। रह-रह कर पक्षियों के पंख फड़फड़ाने की आवाज। महाराज विजय विक्रम फफक कर रो उठे। वह क्षत्रिय, वह लौह पुरुष आज जीवन में पहली बार रोया था। बड़ी व्याकुलता से उन्होंने गर्भगृह की दीवार से सिर टेक दिया।

महमूद गजनवी सोमनाथ के मंदिर को लूटने के लिए विशाल सैन्य के साथ चला आ रहा था। राह में जो राज्य पड़ते, उन्हें अधीनस्थ करना या स्वाहा करता। पुष्कला पुरी ···इन्द्रपुरी-सी सदा सजी रहने वाली शृंगाररता पुष्कला, महमूद की आँखों में सितारा-सी चमकी और काँटे-सी खटकी। पुष्कलाधिपति महाराज विजय विक्रम प्रवास पर थे। सेनापति ने अर्धरात्रि में होने वाले अचानक आक्रमण को जी-जान से झेला किन्तु महमूद के सैनिक टिड्डी दल की भाँति उमड़ते आते। घमासान युद्ध हुआ। अंत में सेनापति महाबाहु रणक्षेत्र में काम आये। महमूद के सैनिकों ने जी भर कर नगरी को लूटा और आग लगा दी। वन, उपवन, भवन, कलश, कँगूरे क्षार-क्षार हो गए।

भगवान महाकाल के विशाल मंदिर में गदा के प्रहारों ने मूर्ति को चूर्ण कर दिया। महमूद का काम समाप्त हो चुका था, वह अपनी राह चल दिया।

महाराज के गुलाबी गालों पर आँखों का पानी अनवरत बहे जा रहा था। रह-रह कर वे दीर्घ निश्वास लेते। फटी-फटी आँखों से वे लुटी-मिटी राजधानी को देखते। उसी पुष्कला को, जिसके लिए वे स्वयं लुटने-मिटने को तत्पर रहते थे। उनका शरीर क्लांत हो चुका था। आँखों की ज्योति धूमिल-सी हो चली थी। छटपटा कर उन्होंने अपनी गजशुण्ड-सी बाहों से गर्भगृह के कपाट थाम लिए। तभी कुछ आहट हुई और महाराज का हाथ तलवार की मूठ पर चला गया, किन्तु पलक मारते वे सचेत हुए। फिर हतबुद्धि से रह गए। उत्तरीय से उन्होंने अपनी आँखे पोंछ लीं। उस अँधेरे में भी एक रूप दामिनी-सा दमका। उसने सम्मुख आकर हाथ जोड़ दिये। और फिर—उस दमदमाती हुई तेजोमय छवि पर जैसे करुणा के घटाघोप बादल छा गए। आग्नेय नेत्रों में जल भर आया। महाराज का सदा से अपराजेय रहने वाला व्यक्तित्व उस समय पराजित हो उठा। घनी काली मूँछों के नीचे छिपे अधर काँप उठे। आँखों से पानी बह चला। तुरन्त उन्होंने अपने को संयत किया और बुझते स्वर में बोल उठे –मेघप्रिया ··।

'हाँ प्रभु····।'

'तुम····यहाँ ?'

'हाँ देव····।'

'समय तुम्हारे लिये उपयुक्त नही, मेघप्रिया ··और अब इस राख के ढ़ेर में रखा ही क्या है।' बड़े कष्ट से महाराज ने उठती दीर्घ श्वास को थामा।

'महाप्रभु रहने दें, मन को अधिक बोझिल न करें। क्या देव की मनोदशा को मैं नहीं समझ रही ? मैं देवदासी हूँ, मनुष्य की छाँह भी मेरे लिए वर्जित रही है। मैंने जीवन भर प्रस्तर ही पूजा····उसकी उपासना की, किन्तु मेरा अभाग्य पत्थर पूजकर भी पत्थर न बन सकी····।'

अनंत दीपों के प्रकाश से आँखों में चकाचौंध। कुमोदनी, बेला और हरसिंगार से मंदिर का कोना-कोना गमक उठा। मृदंग पर थाप पड़ती है और घुँघरुओं की छनछनाहट से मंदिर का बाहर भीतर गुँजित हो जाता है। विशाल प्रांगण के इस छोर से उस छोर तक मानों चांदी की नागिन लहरें ले उठती है या रह-रह कर भादों की बिजुरी चमक उठती है। कौन जाने क्वाँर की पूरनमासी बरस उठती है ···अनायास ·· जाने क्या हुआ।

महाराज मुग्ध, सारे दर्शक खोये हुए। मृदंग की थाप तेज हुई, नूपुरों के बोल गीत के बोल के साथ तेज होते गये। फिर-फिर बढ़े चरण एक रजत स्तम्भ से टकरा जाते हैं। देवदासी गिर पड़ती है, सभा में हाहाकार। उसे

३

कौन स्पर्श करे ? उठाये कौन ? मनुष्य के लिए अस्पृश्य····वह स्वयं ही कुछ पलों में सचेत हो उठती है। चेहरे पर बेबसी की जंजीरें टूट रही हैं। महाराज की भीम भुजाएँ फड़कीं, किन्तु रह गईं। केवल कातर नेत्र देवदासी के लाचार नयनों की भाषा पढ़कर मौन हो गये।

'कदाचित पत्थर ही बन गई होती·····' स्मृतियों के पृष्ठ पलक मारते उड़ गए और यक्षिणी के भेजे मेघदूत की तरह उनका मन पवन, घन, नदियों और पर्वतों को पार करता उस शून्य भयावह गर्भगृह में झमाके के साथ गिरा, जहाँ वे प्राण और पुरुषार्थ दो में से एक का वजन तौलने के लिए आ बैठे थे। उभरा अतीत चोट कर बैठा, किन्तु उनके आहत मन में पहले से बड़े-बड़े घाव थे। महाराज विचलित हो उठे।

'महाप्रभु, मैं नहीं जानती, कब कितनी वय में मुझे मेरे पालकों ने विश्व के हर वैभव से वंचित कर मुझे पाषाण-दासी बनाया। मैं बन गई, हर खुशी से मुँह मोड़ कर। मंदिर की पाषाण प्रतिमा पर अपना सब कुछ अर्पण कर। बचपन की केलि-कुहेलिकाएँ, यौवन की सुनहरी नींदें, रूपहले सपनों भरी आकांक्षाएँ सब पत्थर के देवता को सौंप कर····। किन्तु देव जानते हैं कि इस देवता ने प्रतिदान में मुझे क्या दिया। विद्रोह कर उठी है आज मेरी आत्मा···· महाराज प्रवासी थे और यहाँ महमूद के अत्याचार पाशविकता की चरम सीमा पार कर चुके थे। महाराज···मंदिर के भीतर क्या नहीं हुआ। मूर्ति के सम्मुख ···और वह सब देखती रही····उफ तक न कर सकी। यज्ञवेदी पर आग जलाकर नगरभर के अबोध शिशुओं को झोंक दिया गया। उनकी चीत्कारों महाराज····महाराज ।'

'मेघप्रिया····।' महाराज तड़पे।

'देव, कह लेने दें ···उनकी चीत्कारों से आसमान फट पड़ा, गिरती-पड़ती हाहाकार करतीं माताओं को उनकी यातना देखने खम्भों से बाँध दिया गया। नगर भर की कुमारियों को इसी प्रांगण में जिसे दूध से रोज धोया जाता था, अवापन किया गया ···। और यह देवमूर्ति सब देखती रही ·· सब देखती रही···· इसमें एक दरार तक न आई····एक चटक, एक टूट तक नहीं। हाँ आई कब, जब उसकी समस्त गरिमा को लात मारकर स्वयं उसी पर म्लेच्छों ने गदा के प्रहार किए तब। अपनी चोट से टूटी, दूसरे की चोट से नहीं ··· ।

महाराज हतप्रभ से सुनते जाते और अश्रु पोंछते जाते। देवदासी आवेश में आ गई थी––'अब ये नूपुर····पाषाण को रिझाने कभी नहीं बजेंगे····पत्थर पत्थर ही होता है, देवता नहीं बन सकता। नहीं····नहीं····। दुधमुँहे बच्चों का चीत्कार सुनकर भी, नारियों का सुहाग लुटते देखकर भी जो न पिघला, वह

देवता····वह देवता नहीं ···और मैं देवदासी नहीं ···।' उसने देवदासी का पवित्र चिह्न उत्तरीय उतारा और फाड़ डाला।

चौंक उठे महाराज, फिर प्रकृतस्थ हो गए। देवदासी कहे जा रही थी— 'महाराज, यहाँ एकान्त में क्यों बैठे हैं ? कौन-सा निर्णय लेकर ? समझ नहीं पा रही। क्या इतने प्राणों के होम से नियति की भूख शांत नहीं हुई, जो महाराज प्राणत्याग का संकल्प ले बैठे ? महाराज, पुष्कला फिर बसेगी, यदि ये भीम भुजाएँ आत्मघात करने के बदले आततायी की ग्रीवा पर तलवार उठा सकें। इतने रक्तपात पर भी एक क्षत्रिय आत्महत्या का जघन्य पाप शीश पर चढ़ाये··· रक्त का प्रतिशोध न ले ···क्षमादान प्रभु। देव, अन्नदाता, यदि इन प्राणों का त्याग ही करना है, तो कृपाण की नोक पहले यहाँ ···।' देवदासी ने उच्छ्वासों से धड़कते अपने वक्ष पर हाथ धर दिया और अर्धोन्मीलित आँखें महाराज की आँखों में डाल दीं। पल बीते—एक, दो, चार····। कोरों में पानी आया, श्वासों की गति तेज हुई और ओठों से एक हिचकी फूट पड़ी।

जेठ की दुपहरी। नीचे तपती धरती, ऊपर आग बरसाता असमान। लू के थपेड़ों का मारा यात्री जैसे तनिक सी छाँव पाते ही उसे अंग अंग, पोर-पोर से समेट लेने को आतुर हो उठता है, महाराज का घायल लहूलुहान मन इस संवेदना से मेघखंड-सा चू पड़ने को तत्पर हो उठा। वंश का क्षय, प्रजा का होम, राज्य का सर्वनाश हाहाकार करता हुआ सम्मुख नाचने लगा। व्यथा से उन्होंने आँखें मूंद लीं। फिर एक कराह सी उठी। दोनों बाहें शून्य में फैला दीं। पल भर बाद आँखें खोलीं, तो मेघप्रिया बाहों तक न आकर चरणों की ओर थी। एक कोमल सी देहगंध पाँवों को छूती हुई बाहर निकल गई और एक दीर्घ साँस कक्ष को कँपा गई।

सबेरे की नर्म पर शोख किरणें धरती पर जाल डालने लगीं मोहक सा, पर मुग्ध होने के लिये वहाँ कुछ नहीं बचा। पुष्कला श्मशान हो चुकी है। भग्न भवन, ढहाये गये मकान और जलाये गये उपवन पाशविकता की क्रूर कथा को दुहरा रहे हैं। चीखता-चिल्लाता पक्षियों का एक झुण्ड अभी-अभी निकल गया है। धूप घनी होती आ रही है। महमूद के सैनिकों की टोलियाँ अब भी टोह लेतीं फिर रही हैं। शायद राजा प्रवास से लौट आया हो, कुछ गुप्त धन हाथ लगे। किन्तु एक आश्चर्य, जलाशय के घाट पर पड़े पत्थरों पर ये रूपसी कौन है। शायद ऐसा रूप मनुष्यों में कम ही होता होगा। सूर्य की किरणें रूपसी के कर्णाभरण और कंठाभरण पर पड़कर पीताभा फैला गई हैं। उस मादक रूप को छू कर वातास भी सुगंधित हो उठी है। टोली का नायक चौंक उठा। क्या कोई फरिश्ता इसे यहाँ लाकर छोड़ गया है या धरती फाड़

कर कोई रूह निकल आई है। जन्नत की कोई परी तो नहीं ? सरदार ने बेसब्र होकर देखा। जैसे सोनजुही की माला चाँदी के तालाब में धोकर निकाल ली गई हो। चेहरा गोल, नासिका लम्बी, ओंठ पतले और ऐसे सटे कि दर्द की एक टीस भी बाहर न जा सके। सिर पर जुड़ा था और जूड़े पर शीशफूल, जैसे कभी-कभी भादों की रात में अंधेरी छंट जाये और पीला सा चाँद झाँक उठे।

सरदार घोड़े से उतर कर पास आया, तो पाया कि वह बाला निरंतर रोये जा रही है। उसके गुलसुर्ख गाल आँसुओं से तर हैं ! सरदार घोड़े की रास पकड़े उसके एकदम पास आ गया—'तुम कौन हो, क्या मैं जान सकता हूँ ?' 'जानकर क्या होगा, सरदार। मुसीबत के समय अपना और अपने खानदान का नाम बताना उसकी बेइज्जती है। एक दुखिया हूँ और अपनी लाचारी पर आँसू बहा रही हूँ, सरदार।'

सरदार को ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी, बढ़कर और आगे आया 'अरे····अरे····आप तो रोये जा रही हैं। अरे भई, दुनिया में सभी तो बेदर्द नहीं होते, कुछ हम दर्द भी होते हैं। कुछ बतायें तो आप, आखिर माजरा क्या है ? कौन सी ऐसी मुसीबत आयी आप पर ? रो आप रही हैं और कलेजा हमारा मुँह को रहा है।'

युवती और जोर से रोई। सुबकते-सुबकते बोली—'सरदार और तो मैं कुछ न बता सकूँगी, कुछ न कह सकूँगी। केवल इतना ही कि जो अन्याय और अत्याचार राजा विजय विक्रम ने मुझ पर किया है, वह कोई नृशंस और अत्याचारी शासक भी अपनी प्रजा के साथ न करता होगा। औरत के साथ इतना बड़ा धोखा। उफ····सरदार कहानी बड़ी लम्बी है···इतिहास पुराना है। कहाँ तक सुनेंगे ? मेरी नस-नस में से ज्वाला फूट रही है। आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ फूट रही हैं, पर लाचार हूँ। प्रतिशोध लेने आई थी, किन्तु नहीं ले पा रही ? उफ····अपमान से देह फुँकी जाती है। कोई मेरा मददगार होता····।' युवती ने पलकें ऊपर उठा दी।

सरदार कड़क उठा, हाथ तत्काल कमर से झूलती तलवार पर पहुँच गया। बोला—'उफ, इतनी सी बात और इतना गम ! अभी इसी तलवार का कमाल देखें। है कहाँ राजा ? चन्द मिनटों में धड़ से गर्दन जुदा नजर आयेगी। सरदार भीतर से पुलक उठा, बाहर से आग बबूला होकर चारों ओर ढूँढ़ती नजरों से ताकने लगा।' युवती विद्रूप की हँसी हँसी—'सरदार, वह यहाँ कहाँ ? वह तो राज्य और सम्पत्ति नष्ट होने पर भी अपने नाच-रंग में मस्त है। उनके पास अब भी अतुल सम्पदा है, यहाँ से बहुत दूर।' 'क्या आप उनका ठिकाना बता सकती हैं ?' वहीं से आई हूँ, सरदार। दो दिन का

मार्ग है। किन-किन संकटों का सामना करती यहाँ तक आई हूँ ? केवल इसी लिए कि कदाचित अपनों में कोई जीवित होता···कोई तो अन्याय का बदला लेता····।'

रूपसी सरदार के पास आ गई, सरदार का मन खिलकर गुलाब हो गया। खुदा ने दिया तो इतना दिया कि उठाये नहीं उठता। बोला—'अगर आपको उज्र न हो, तो आप घोड़े पर मेरे साथ बैठकर चली चलें और फिर देखें।'

'मददगार के साथ कैसा उज्र, कोई तो अपना मिला आँसू पोंछने वाला।' युवती ने खुद ही घोड़े पर चढ़ने का प्रयास किया। सरदार दुहरी खुशी से पागल हो गया। हाथों का सहारा देकर युवती को घोड़े पर बैठाया और एक दिशा की ओर घोड़ा दौड़ चला। सैनिकों की टोलियाँ उसके पीछे थीं।

मैदान, छोटी-छोटी पहाड़ियाँ और फिर रेगिस्तान। बीच में जनपथ, लोगों ने दहशतभरी निगाहों से देखा और नजरें चुराकर हट गए। दिन चढ़ा, दोपहर जली और फिर शाम ढली। मीलों का अनजाना सफर। सरदार युवती की आँखों में आँखें गड़ा कर पूछता—'वल्लभगढ़ अभी दूर है न ?'

'हाँ सरदार, बहुत दूर। क्या आप चाहते हैं कि जल्दी आ जाय ?' युवती छलनाभरी हँसी हँसकर पूछती। सरदार तड़पकर फिर कहता—'नहीं-नहीं, ऐसी जल्दी नहीं है।'

साँझ झुक आई। पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ा। वृक्षों की चोटियाँ नजर आ रही थीं। थोड़ी देर में वृक्षों के पुंज और झाड़ियों के झुरमुट दिखे। मदिर नयनों से युवती फुसफुसायी—'सरदार···।'

'कहो··।' सरदार का सम्मोहित स्वर निकला।

'थोड़ी देर रुककर विश्राम न कर लें ?'

'जो हुक्म, बन्दा हाजिर है।' सरदार का दिल उछल पड़ा और घोड़ा रुक गया।

अश्व वृक्षों से बाँध दिये गए। सैनिकों ने आराम करना शुरू कर दिया। कुछ अँगड़ाइयाँ, कुछ जँभाइयाँ और कुछ ठिठोलियाँ। विश्राम की मुद्रा में युवती ने सरदार से कहा—'एक वस्त्र मिल सकेगा, कपड़ों में धूल कसक रही है।'

उसके जरा से अनुरोध पर एक साथ न जाने कितने कमरबन्द और बहुमूल्य साफे उसके कदमों पर गिर पड़े। उसने एक-दो उठा लिये और कटाक्ष से सरदार को अपने साथ आने का इसारा देकर दूर झुरमुट की ओर चली गई।

सघन वृक्षों की छाँव में एक सूना झुरमुट। युवती ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा। महाराज अब सुरक्षित हो गये ··। आसन्न संकट टल गया था। महा-

राज और पुष्कला, दोनों के लिये और क्या करे। इससे अधिक पुरुषार्थ उसके पास न था। उसे लगा मानो मस्तिष्क का बोझ उतर गया हो। यादों की चित्रावली सरकने लगी। प्रांगण में घुंघरू बजने लगे हैं। बिजुरी-सी तड़पती देवदासी और सीप-सी दो आँखें उस पर टिकी हैं। उस तड़प के क्षणों में भी नयन नयन से मिल जाते है और नत हो जाते हैं। बेबसी की जंजीरें टूट पड़ती है। घुंघरू तेज होते हैं देवदासी निश्चेष्ट गिर गई है''' पर भीम भुजाएँ, आश्रय देने वाली भीम भुजाएँ फड़क कर थम गई हैं''''। गर्भगृह का प्रांगण '' भरे-भरे गुलाबी गालों से निरंतर पानी बह रहा है महाराज के। 'मेघप्रिया''''यह समय तुम्हारे उपयुक्त नहीं'''।' विशाल बाँहें फैल गई हैं'''' अंतिम दर्शन है यह''''।

युवती की दृष्टि उठती है, सामने सरदार खड़ा मुस्कुरा रहा है। वह भी मुस्कुराई, पर फूल झरे और न मोती। सरदार ने उसे बाहुपाश में भर लिया और यह क्या''' रक्त की धार बह निकली। एक चीख के साथ सरदार ढेर हो गया। युवती ने रक्तसनी कटार निकाल ली सरदार की छाती से। उसकी आँखें उठीं '' मंदिर के झिलमिलाते दीपों के बीच घुंघरू बजे''''और कटार वक्ष के पार '''।

थोड़ी देर में युवती का कमनीय कलेवर पीला पड़ने लगा। हिरना नयन पथरा उठे। उन चट्टान सी आँखों में महाराज विजय विक्रम का चित्र पूरा का पूरा उभर आया था।

———

बनाफरी का 'कहरी' लोकगीत

आशाराम त्रिपाठी

लोकगीतों के प्रभेदों की श्रृंखला में संयुक्त कड़ियों की संख्या के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः लोक-हृदय के हारे एवं लोक-वाणी के अलंकार ये गीत शोध के क्षेत्र में विस्तृति, सूक्ष्मता, गहनता एवं उदारता-समन्वित दृष्टि की अपेक्षा रखते हैं। यद्यपि बुन्देली लोकगीतों के अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, गवेषणात्मक कार्य भी हुये हैं, पुनरपि सम्प्रति अनेक लोकगीत अन्वेषी दृष्टि से बहुत दूर ग्राम्य-अञ्चलों के कलकण्ठों में विश्रान्ति ले रहे हैं। 'कहरी' इसी श्रेणी का लोकगीत है।

'कहरी' प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला लोकगीत है। घर, खेत, खलिहान तो मानो इसके अधिकृत क्षेत्र हैं। इस लोकगीत की मैत्री गाँव की सादगी और भोलेपन से अधिक है। नई चकाचौंध से प्रभावित ग्रामीण लोक-मानस इससे सर्वथा उदासीन है, केवल परम्परागत यथार्थ की प्रतिकृति कृषि-मजदूरों का चाव इसके साथ श्लिष्ट है। उत्तरी छतरपुर का दूरस्थ ग्रामीण अञ्चल इन लोकगीतों का प्रश्रय-स्थल है और यह प्रश्रय भी परिमाण में इतना क्षीण है कि लोकगीतों की यह विधा शनैः शनैः लुप्त होती जा रही है।

'कहरी' की आयु का सम्बन्ध विपुलांश में अनिश्चय से जान पड़ता है। वैसे इन लोकगीतों में प्रयुक्त शब्द-भण्डार से प्राप्त निष्कर्ष इतना कहने में तो समर्थ हैं कि इनको मुसलमानों के आगमन के पश्चात् अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी के बाद की रचना माना जा सकता है, पर बुन्देली की प्रकृति में अरबी-फारसी के मेल के उपरान्त ही इन लोकगीतों का सृजन हुआ है—ऐसी सीमारेखा खींचना भी अपनी अदूरदर्शिता एवं आलस्य का ज्ञापन है। अतः इन लोकगीतों के प्रणयनकाल के निर्धारण-विषयक निष्कर्षों की लब्धि भविष्याधीन है।

'कहरी' की बिरादरी से ठुमरी लोकगीत का सम्बन्ध भी बतलाया जाता

है। इन लोकगीतों का संकलन करते समय कुछ गायकाओं ने बतलाया कि इन दोनों में मात्र नाम-भेद है, पर जब लोकध्वनियों में ढली ठुमरी से मेरी भेंट हुई, तो मैंने दोनों में पर्याप्त रूपगत भिन्नता पाई। यद्यपि दोनों की विषय वस्तु लगभग एक सदृश है। पारिवारिक कलह के चित्रों, शृंगार रस की झलकियों, ननद-भावज एवं पति-पत्नी की रसमय बातों से दोनों का कलेवर निर्मित है, प्रकृति भिन्नों की स्वच्छन्द है। ठुमरी शास्त्रीय-संगीत की ठुमरी की कवायद से दूर स्वतन्त्रता से पद-प्रक्षेपण करने वाली है। यहाँ सरगम के स्वर लोकध्वनियों के पीछे दौड़े, तो दौड़ें, पर शास्त्रीयता के बंधे बंधाये पैमाने पर चलना इसके स्वभाव में नहीं। इसी प्रकार से 'कहरी' लोकगीत का स्वभाव भी परतन्त्रताप्रिय नहीं है। उसे सरगम में बद्ध करने के लिये किसी शास्त्रीय संगीत-निष्ठात पण्डित को उसके चरणों में घुटने टेकने पड़ेंगे। शायद इस गीत ने अपने आपको बंधन में बाँधना पसन्द नहीं किया। अपनी स्वाभाविक स्वरलहरियों से सहज मैत्री रखने वाले इस लोकगीत को न तबला-ढोलक की अपेक्षा हैं और न हारमोनियम-सितार की। घरों में हाथ-चक्की की घरघराहट और खेतों में वनस्पति-जगत के साथ अठखेलियाँ करती हुई पवन की सरसराहट ही उसका संगीत है। ध्वनियों में बंधे-बंधाये संगीत की अपेक्षा इस संगीत में स्वाभाविकता, मादकता एवं मधुरता प्रचुर परिमाण में है। संभव है कि 'स, रे, ग, म…' पढ़ने वाले तोते का मन इसे सुनकर खीझ उठे, वह इसे 'गँवारू' करार दे दे। भले ही दे, पर ये लोकगीत गिरिकानन, खेत-खलिहान एवं सघन अमराइयों में कल-काकली बिखेरने वाली कोकिलाओं के थकेमन की खुराक है, भौतिक विसंगतियों के द्वारा झकझोरे हुये मानस का सहारा हैं, अभावों के थपेड़ों द्वारा प्रताड़ित दैन्य के आश्रय-स्थल हैं। इन्हें न किसी पत्रिका में प्रकाशित होने की आकांक्षा है और न मोटी-मोटी जिल्दों के कठघरों में बन्द होने की। ग्रामाङ्गनाओं के कलकण्ठ ही इसके शाश्वत आवास हैं। शायद नयी चकाचौंध में जाना इन्हें नहीं रुचता। यह इनकी प्रकृति के अनुकूल भी है। 'कहरी' का लगभग नामराशी संगीत के ताल-मुकामों में बद्ध कहरवा भी इसकी संगीत-दुनिया में नहीं। वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले राछरे एवं कजरी भी इससे पर्याप्त रूप भेद रखते हैं। वस्तुतः 'कहरी' लोकगीत गाया जाता है इन सब के साथ, पर है सबसे निराला।

रस-व्यंजना की कसौटी पर परखने से 'कहरी' शृंगार का दामन थामता दिखाई देता है। अपने वृहत् परिवार एवं मानव जीवन की प्रधानवृत्ति से सम्बद्ध होने के कारण रसों की सभा में शृंगार रस को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। कवि-समाज का झुकाव भी इस ओर ही अधिक रहा है। 'कहरी' लोकगीतों में भी रस-राज की झाँकी के दर्शन होते हैं। मानव के अन्तस्तल में प्रसुप्त रति भाव को जागृत करने में नायिका का सौन्दर्याकर्षण प्रमुख है। नायिका मुँह से बोले या न बोले, पर उसका मौन सौन्दर्य इतना मुखर होता है कि अपनी अनकही स्थिति में न जाने क्या-क्या कह देता है। इसीलिये उसके दर्शन मात्र के लिये प्रेमी के नेत्र लालायित रहते हैं। नायिका के वस्त्राभूषणों से ही उसके अनुपम सौन्दर्य का बिम्ब आभासित होने लगता है। चोली को देखकर ही यह सौन्दर्यानुमिति द्रष्टव्य है—

> 'गोरिया कै चोलिया समुंद हिलोरै,
> मुखवै लौंग की डार॥
> वहँ सें आगये राजा से सिपहिया,
> चोलिया देख लुभान॥
> गोरी कै चोलिया अजब बनी है,
> गोरी धना कैसी न होय॥'

सौन्दर्य के ऋतुराज को देखकर प्रेम की कोयल हृदय के उपवन में कुहुकने लगती है। हर्ष, आशा एवं औत्सुक्य का त्रिविध समीर रति की स्मित कली को बार-बार दुलारता है। कली के पराग से समूचा परिवेश महकने लगता है। यहाँ जाति भेद या रूढ़ियों का बंधन स्वीकार्य नहीं, राजा एवं भिखारी समान रूप से आहृत होते हैं। प्रेम के इसी स्वरूप को उजागर करने वाली ये पंक्तियाँ उदाहरणीय हैं—

> "सब फूल फूले अँजहिन-सँजहिन, उमरी फूलै आधीरात।
> वहै फूल खोंसे है कहरा बिटौना, भरत रजन घर पान।
> राजा कै बेटी अंचल-चंचल, कहरा खां देख लुभान।
> 'छोड़ रे कहरा अपनी कहरियै, छोड़ रजन घर पान।'
> 'तुम्हरे बेटी दूध भात कै टठिया, हमरे खपरिया निहाँय।'
> 'आगी लगै दूध भात कै टठिया, हमरा खपरिया मन लाग।'
> 'तुम्हरे तो बेटी है महला दुमहला, हमरे झुपड़िया निहाँय।'
> आगी लगै ये महला-दुमहला हमरा झुपड़िया मन लाग।"

उत्कण्ठा के परिधान में रति भाव के अनेक सुसज्जित चित्र इन लोकगीतों में प्राप्त होते हैं। प्रियतम तक अपना सन्देश पहुँचाने के लिये तोते द्वारा पत्र-प्रेषण की प्रथा तो काव्य-रूढ़ि है। मध्यकाल के कवियों में इस रूढ़ि के अनुपालन की प्रवृत्ति बहुलांश में है। 'कहरी' लोकगीतों में भी लोकगीतकारों ने

इस रूढ़ि का निर्वाह किया है। पत्र-प्रेषण के लिये नायिका को किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता नहीं, अपने प्रिय द्वारा पालित सुआ पर उसे पूरा भरोसा है—

"हरि जू के पाले हैं परबत सुअना, ओई चिठियां लै जांय।'
'कैसे कै लइहैं गोरी चिठियां-पतियां, कैसे लइहैं उड़ान।'
'लाली चोंच ऊ चिठियां दाबैं, पंखन लइहैं उड़ान।"

श्रृंगार के समानान्तर हास्य-व्यंग्य की मोहक झांकियां भी इन लोकगीतों में दृष्टिगोचर होती हैं। इस रस भरे वाग्युद्ध में बेचारी ननदी को प्रायः मात खानी पड़ती है। इसी प्रकार रीतिकालीन दूतियों को भी नायिकाओं के आक्षेप सहन करने पड़ते थे। यहां भावज के आक्षेप एवं ननद द्वारा की गई वकालत का यह रूप देखिये—

"मैं तोंसों पूंछों ओ बारी ननदी, मंगिया सेंदुर कैंह लाग।'
'बारे कै साथिन बानिन बिटिया, हुइं सेंदुर भरी मांग।'
'मैं तोसों पूंछों ओ बारी ननदी, नैन काजर कैंह लाग।'
'मैं बिरना कै रसुइया तपतती, धुअना कै मस लाग।'
'मैं तोसों पूंछों ओ बारी ननदी, पान बीरा कैंह चाव।'
'बारे कै साथिन बरैन बिटिया, पान बीरा हुंइं चाव।'
'मैं तोसों पूंछों ओ बारी ननदी, अंचला दाग कैंह लाग।'
'मैं तो बिरन कै गइया दुहतती, अंचला दाग हुंइं लाग।"

'कहरी' लोकगीतों में श्रृंगार रस की शास्त्रीय विधानानुकूलता के दर्शन अल्प परिमाण में भले ही हों, पर अपनी रसमयी अभिव्यक्तियों के कारण ये पाठक के हृदय को सिक्त करने में पूर्ण समर्थ हैं। हमारे पारिवारिक जीवन को एक सम्बन्ध-सूत्र में संग्रथित करने वाले भावों के आकर के रूप में ये लोकगीत लोकसाहित्य की मूल्यवान निधि हैं।

'कहरी' लोकगीतों में सहज रसाभिव्यक्ति की भांति निरायास अलंकरण की प्रवृत्ति भी प्रकट है। यहां अलङ्करण तनगत न होकर आत्मगत है। भाषायी अलंकरण से काव्य का कलेवर चाहे जितना संवरता हो, पर इन लोकगीतों में उसकी यत्किंचिदपि परवाह नहीं की गई है। हां, व्यावहारिक जीवनानुभवों को बोलचाल की भाषा में व्यक्त करने के उपक्रम में यत्र-तत्र अर्थालङ्कारों के जो चित्र उपलब्ध हैं, वे अपने आप में भव्य हैं। उपमानों की सटीक एवं स्वाभाविक योजना का यह चित्र देखिये—

"बहिनी हमारी वन कै चिरैया, आज उड़े कै काल।
माई हमारी कगर कै रुखवा, आज धंसै धौं काल॥"

विराट रूपकों के माध्यम से नायिका की यह मांग भी लौकिक है या अलौकिक—यह स्वतः विचारणीय है—

धरती कै लेंहगा बादल कै चुनरी, पवन कै चोलिया सिमाव।'

'कहरी' लोक गीतों के भाषायी स्वरूप पर दृष्टिपात भी अनपेक्षित नहीं है। बनाफरी बुन्देली की उपबोली है और पश्चिमी हिन्दी से इसका पोती का रिश्ता है। बनाफरी उपबोली में प्राप्त लोकसाहित्य समृद्ध नहीं है, संभवतः इसी कारण वह सर्वाधिक उपेक्षित भी रही है। इस उपेक्षा के उपरान्त भी बनाफरी अपनी मौलिक विशिष्टताओं की संरक्षा किए हुए है। बनाफरी की प्रकृति पूर्वी हिन्दी की आत्मजाओं (बघेली एवं अवधी) से पर्याप्त तालमेल खाती है, पर मूलभूत विशेषताओं में इसका झुकाव बुन्देली की ओर ही है। 'कहरी' लोकगीतों में प्रयुक्त 'वहै,' 'निहांय', 'बरसगे,' 'ह्यां', 'हवै', 'उइसैं', 'बिटौना', 'जान', 'धौं' आदि संज्ञा सर्वनाम एवं क्रिया-शब्द बघेली एवं अवधी शब्द परिवार के सदस्य हैं, जबकि 'धन,' 'दुलइया,' 'ग्योंड़े,' 'नदारो,' 'बिसूरै,' 'बरोठे,' 'बेरा,' 'बुदरिया,' 'हरवाओ,' 'माई,' 'ठठिया' आदि शब्द समूचे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में धड़ल्ले से बोले जाते हैं। कतिपय उर्दू शब्दों जैसे 'नजर', 'दाग', 'गुलाम', 'जमीन', 'मरद', 'अजब' आदि का प्रयोग भी कहरी लोक गीतों में हुआ है। यदि हम विज्ञान की भाषा में कहें तो इस मेल को मिश्रण न-कहकर पूर्ण यौगिक कहेंगे। यह मेल न तो पाठक को अरुचिकर लगता है और न ये शब्द उधार लिये जान पड़ते हैं। इस प्रकार से 'कहरी' लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दावली मे बुन्देली की पारिवारिक अभिवृद्धि तो हुई ही है, इसके साथ-ही-साथ उनकी भाषा में सरलता, सहजता, प्रवाहमयता एवं प्रभावोत्पादकता जैसे गुण विद्यमान हैं।

साहित्य-मनीषियों की उदासीनता एवं उपेक्षा के शिकार 'कहरी' लोक-गीत पाठकों से कहते हैं, "आइये! हमारे अकृत्रिम एवं बंधन-विहीन संसार में विचरण कीजिये, जहां जीवन की रसमयता है, अलंकरण की स्वाभाविकता है, वाग्जाल के नाके नहीं, माथापच्ची करने वाली दुरूहताभरी खाईयां नहीं, जमीन-आसमान के कुलावे मिलाये जाने का उपक्रम नहीं, बसुन्धरा का परित्याग कर केवल अम्बर को छूने की वाह्य-रंगरंजित उड़ानें नहीं। यहां जो कुछ है, अपना है, किसी का उधार नहीं। हमें तथाकथित अभिजात्य वर्ग में सम्मिलिति की चाह नहीं, समीक्षा की परवाह नहीं। ज्ञान के कुबेरो! हमारी थोथी समझी जाने वाली पूंजी की ओर झांको, इसकी गरिमा को आंको। विश्वास

मानिये, आप निराश होकर नहीं लौटेंगे। हमारे ताप एवं शैत्य के समक्ष वातानुकूलित कक्ष गिड़गिड़ाते हैं। हमारा रिश्ता अर्वाचीन सभ्यता से नहीं, प्राचीन संस्कृति से है। आपकी नवीनता जितनी अधिक वन्द्य है उतनी ही निंद्य. हमारी पुरातनता जितनी अधिक गर्हित है, उतनी ही श्लाघ्य। आपका साहित्य जितना सम्पन्न है, उतना ही आपसे दूर है और हम आपकी दृष्टि में जितने विपन्न हैं, उतने ही आपके निकट हैं। फिर भी हम इतने उपेक्षित क्यों है?'

———

करिया गिलगोंजा का जाँचें, पढ़े होंय तो बाँचें।
पढ़े लिखे जे बिना पढ़िन कों नचवाबैं मई नाचें।
उल्टी सीधी बातें देकें मुलकन खा रये लाँचें।
तनधौरो पढ़ जाते साँस लगती कछू न आँचें।
चिठिया देख परम अनपढ़ के दिल में होत दराँचें॥

—परमकवि

नैना गैरे काजरबारे, लगें देखतन प्यारे।
जे नैना देखत के भोरे होत बड़े गुनबारे।
बिन बोलें कै देत सबइ कछु बोलन तें अतकारे।
साँझ मिलें नैनन सों नैन हो जाये भुनसारे॥

डा० नारायण सोनी 'विवेक'

कहावतों में चित्रात्मकता

डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

वस्तुतः वास्तु, मूर्त्ति और चित्रकला में तो चित्रण मूलाधार है ही, संगीत और काव्य में भी मुख्य उपादान है। संगीत में जहाँ भाव-भंगिमा, अभिनय और नाद चित्र उपस्थित करते हैं, काव्य में शब्दार्थ चित्र-निर्माण के माध्यम हैं। वैसे तो प्रत्येक शब्द थं का अपना एक चित्र होता है, किन्तु फिर भी कवि या वक्ता अपने कथ्य को श्रव्य तक पूर्णरूपेण पहुंचाने के लिए विभिन्न चित्रों का सृजन करता है। ये ही चित्र भाषा को चित्रमय बनाते हैं, जिससे कथ्य को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। जहाँ चित्र स्पष्ट नहीं बनते, धुंधले होते हैं, वहाँ कथ्य भी स्पष्ट नहीं हो पाता। यह भाषा का भाव-कल्पनात्मक योग है, जो श्रव्य के सुषुप्त भावों को जाग्रत करने में समर्थ होता है। चित्रण जितना ही सजीव होता है, विषय उतना ही चित्ताकर्षक तथा रसात्मक बन पड़ता है। इस दृष्टि से कहावतों में उरेहे गये चित्र स्पष्ट तथा श्लाघ्य हैं। कहावतों में लोकजीवन के बीच से ही अधिकांश चित्रों के लिए सामग्री एकत्रित की गई है, ताकि वे अपने लघु परिवेश में ही कथ्य को स्पष्ट कर सकें।

कहावतों में प्रयुक्त चित्रों का विवेचन स्थूल व सूक्ष्म चित्रों की दृष्टि से किया जा सकता है। स्थूल से तात्पर्य वाह्य स्थूल चित्र तथा सूक्ष्म से भावपूर्ण आन्तरिक चित्र है। कहावतों में दोनों ही प्रकार के चित्र अत्यन्त संक्षिप्त रूप में सामने आते हैं। कहावत-शिल्पियों ने उनका केवल संकेत मात्र ही दिया है, जिससे उद्बुद्ध बोद्धा की कल्पना-शक्ति उन्हें स्वयं ही पूर्ण कर लेती है। दोनों ही प्रकार के चित्रों के लिए कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं—

स्थूल चित्र—

दाता के घर लछमी ठांड़ी रहत हजूर।
जैसें गारा राज कों भर-भर देत मजूर॥

कहावत में वास्तु शिल्पी को मजदूरों द्वारा भर-भरकर गारा देने के बिम्ब द्वारा दान-दाता के द्वार पर लक्ष्मी | धन को मजदूर के रूप में चित्रित किया गया है और वह स्पष्ट किया गया है कि दान देने से धन की हानि नहीं होती, अपितु वह नित नूतन बढ़ती है। यहाँ पूरा चित्र न उपस्थित करके कहावतकार मात्र संकेत ही देता है, जिससे पाठक की भावयित्री कल्पनापूर्ण चित्र निर्मित कर लेती है। इसी प्रकार—राम भरोसे जे रहे परबत पै हरयायें—बिना सींच, खाद आदि के पर्वत पर उगने पौधे सदैव हरे-भरे रहते हैं। वर्षा का पानी तक उन्हें स्थिर रूप से सुलभ नहीं हो पाता। उसी प्रकार ईश्वर के अधीन रहकर कार्य करने वाला व्यक्ति सदैव सुखी रहता है। यहाँ भी संकेत ही है। कल्पना द्वारा सम्पूर्ण चित्र कल्पित किया जा सकता है—

नारि सुहागिन घट भर लावै,
दूध मछरी सन्मुख जो आवै।
सामें गऊ चुखावै बच्छा,
जेई सगुन है सब सें अच्छा ॥

उक्त पंक्तियों में सगुन-व्यंजक चार चित्र उरेहे गये हैं—पहला चित्र सौभाग्यवती स्त्री का जल से परिपूर्ण घड़ा लिए हुए आने का है। दूसरा दही और तीसरा मछली के दर्शन का है, चौथा चित्र बछड़े को स्नेहपूर्वक दूध पिलाती हुई गाय का है। सभी चित्र स्पष्ट, उभरे हुए और सामान्य जीवन के बीच से चुने हुए आत्मीय हैं।

सूक्ष्म चित्र—

"रेंहट की घरियन की नाईं आवो जावो लगो।"

इस कहावत में सांसारिक माया-जाल में फँसे जीव की गति को रेंहट के बिम्ब द्वारा चित्रित किया गया है। एक घटी के आने और दूसरी जाने में जो एक क्रम निहित है सांसारिक आवागमन का ही प्रमाण है, आज जो आया है, कल वही जायेगा, फिर उसके स्थान पर दूसरा आयेगा और फिर उसके जाने के बाद तीसरा, चौथा और फिर पाँचवाँ, जैसे रेंहट के माल में लगी घटिकायें एक के बाद एक आती-जाती रहती हैं। घटी के आने में जिस प्राणसम्पन्नता का उच्छलन है, जाने में वैसी ही प्राणहीनता का बोध समय की अस्थिरता भी व्यंजित होती है। ऐसा ही एक व्याकुलता का चित्र देखें, जो पिंजड़े में बन्द पक्षी की फड़फड़ाहट द्वारा उरेहा गया है। कितना मार्मिक बन पड़ा है—

"पिंजरा के पंछियन नाईं फरफरा रये।"

इसी प्रकार कहावतों में न जाने कितने ही भावपूर्ण और संवेदनशील चित्र

उरेहे गये हैं। प्रेमपूर्ण विवशता और संकोच का चित्र नेत्रों के विशेष हावों-भावों के बिम्ब द्वारा स्पष्ट हुआ है—

"अँखियन अँखियन में बात हो गई !'

संकोच एवं लज्जा के लिए छुई-मुई का चित्र—

"छुईमुई हो रईं।"

सुकुमारताव्यंजक नागबेल का चित्र—'पान फूल हो रईं' तथा मधुर संभाषण के लिए—बातन में फूल झरत—लता से झड़ते हुए पुष्पों का बिम्ब हृदय में अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहता।

स्थूल एवं सूक्ष्म चित्रों के अतिरिक्त कहावतों में कवि-कल्पना के विभिन्न रूपों को इन्द्रियों के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा—

१. दृष्टि-व्यापार-बोधक चित्र
२. स्पर्श-व्यापार-बोधक चित्र
३. घ्राण-व्यापार-बोधक चित्र
४. आस्वाद-व्यापार-बोधक चित्र
५. श्रवण-व्यापार-बोधक चित्र

विवेचन की स्पष्टता के लिए उक्त सभी वर्गों के चित्रों पर पृथक-पृथक रूप से विचार करेंगे।

१—दृष्टि-व्यापार-बोधक चित्र—

कल्पना को परिचालित करने वाली इन्द्रियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान नेत्रों का है, इसीलिए कहावतों के चित्र-संयोजन में जितना इस इन्द्रिय का उपयोग हुआ है, उतना किसी अन्य इन्द्रिय का नहीं। सामान्य जीवन में भी इस इन्द्रिय का महत्व अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक है। इन्द्रिय व्यापार-बोधक चित्रों के अन्तर्गत दृश्य चित्रों का प्राचुर्य इसका अकाट्य प्रमाण है। ऊपर स्थूल और सूक्ष्म चित्रों की विवेचना में दिये गये लगभग सभी चित्र चाक्षुष ही हैं, फिर भी कुछ और चित्र देखें—

१. ढोंग और आडम्बर-व्यंजक दृश्य चित्र—

"राम राम कै आवै चाय न कै आवै,
माला दम न पावै।"

२. अस्थिरता-व्यंजक दृष्टि चित्र—

"भमीरी सी नचत फिरत"

३. निष्क्रियता-व्यंजक दृष्टि चित्र—

"खेल के बिजूका।"

२—स्पर्श-व्यापारबोधक चित्र—

नेत्रेन्द्रिय व्यापारबोधक चित्रों के प्राचुर्य के बावजूद कहावतों में अन्य इन्द्रियों का कम महत्व नहीं, उनके द्वारा परिचालित व्यापारों का प्रयोग भी अधिक हुआ है। स्पर्श चित्रों में स्पर्शजन्य संवेदनाओं के समन्वय से बिम्ब का निर्माण होता है। मसृणता, चिकनापन, कड़ापन, खुरदरापन जैसे शब्द इस प्रकार के चित्रों के वाचक हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. कष्ट एवं पीड़ा व्यंजक स्पर्श बिम्ब—'लगरा की कोंड़ी पाईं कराबात।'

२. सुकुमारता-व्यंजक स्पर्श चित्र—'दई परोसा खोंप लगी।'

३. सुन्दरता-व्यंजक स्पर्श चित्र—'गोरी तें चिकनिया रामदास।'

४. विरोध-मूलक स्पर्श उपमान—'आँखिन में किरकिरी सी कसकत।'

३—घ्राण-व्यापार-बोधक चित्र

घ्रातव्य पदार्थों की भाँति ही घ्रातव्य उपमानों का मार्मिक प्रयोग भी अपने सौरस्य से कथन को आपूर्णकर स्पृहणीय बना देते हैं। किन्तु इस प्रकार के चित्र बहुत कम प्राप्त है। न केवल कहावतों में बल्कि काव्य-जगत के विस्तृत क्षेत्र में भी इनकी प्रगति असंतोषप्रद है। फूलों आदि विभिन्न गंध-रूपों के प्रतीकों और संश्लिष्ट घ्रातव्य बिम्बों द्वारा इनका निर्माण हुआ है। कुछ चित्र देखें—

१. सौंदर्य-व्यंजक घ्राण बिम्ब—'सोने में सुगन्ध है।'

२. दुर्गन्ध एवं घ्राण-व्यंजक चित्र—'एक तो गड़रिन दूजे लासुन खायें।'

४—आस्वाद्य-व्यापार-बोधक चित्र

कहावतकर्मी पुरुषों की आस्वाद्यानुभूति एवं आस्वाद्य-कल्पना भी कम तीव्र नहीं थी। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को आपेक्षित एवं सशक्त मार्मिक उपमानों द्वारा चित्रित किया है। यहाँ तक कि सौन्दर्य के आस्वाद की अभिव्यक्ति और व्याख्या दोनों में ही आस्वादपरक बिम्बों का उपयोग हुआ है। 'देखत की धन नौनी, राँटा करै न पौनी' कहावत में आस्वाद बिम्ब—नौनी' लवण, लावण्य द्वारा स्त्री की अतीव सुन्दरता की व्यंजना की गई है। नीचे आस्वाद-सम्बन्धी कुछ और उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. स्वार्थता-व्यंजक आस्वाद बिम्ब—'खीर में सोंज महेरी में न्यारे।'

२. परास्तता-व्यंजक आस्वाद बिम्ब—'दाँत खट्अे हो जें।'

३. आत्मविभोरता-व्यंजक आस्वाद उपमान—'मिसरी सो घुर रई।'

४. आनन्द-व्यंजक आस्वाद्य चित्र—'मीठी बातन में पेट नई भरत।'

५—श्रव्य-व्यापार-बोधक चित्र

श्रवण-व्यापार के समान ही संसार के श्रव्य उपमानों का भी महत्व है। इनमें काव्याभिव्यक्ति में कितनी मार्मिकता आ जाती है, कहने की आवश्यकता

नहीं। किन्तु खेद का विषय है कि इन बिम्बों पर कहावतकर्मियों का ध्यान कम ही गया है। ये बिम्ब कोयल, वीणा आदि ध्वनि प्रतीकों पर आश्रित हैं। इन प्रतीकों के अपने चाक्षुष बिम्ब भी होते हैं किन्तु आप्रासंगिक। उदाहरण देखें—

१. घोषणा-व्यंजक श्रव्य चित्र—'रमतूला देत फिरत।'

२. खोखलापन-व्यंजक श्रव्य उपमान—'थोथा चना बाजे घना।'

३. आनन्द एवं हर्ष-व्यंजक श्रव्य चित्र—'पैली ताप तुपरया बसी, खीरा देखें खिलखिल हँसी।'

उक्त चित्रों के अतिरिक्त इन्द्रिय व्यापार-बोधक चित्रों का एक अन्य वर्ग भी हो सकता है, जिसे हम इन्द्रियव्यापार-बोधक मिश्र चित्र कहेंगे। जैसे—'बातन में फूल झरत' में एक ओर जहाँ पुष्पों की वृष्टि का दृश्य दृष्टि चित्र को उद्भूत करता है, वहाँ दूसरी ओर उनका कोमल स्पर्श चित्र हृदय को सुख और आनन्द से भर देता है तथा सुगन्धि का भाव चित्र रोम-रोम को उद्भावित कर मनमोहक सुरभि से सुवासित कर देता है।

इस प्रकार मानव भावाभिव्यंजक चित्रों की कसौटी में कहावतें खरी उतरती हैं। चित्रों के माध्यम से अभीप्सित भावों को बोद्धा तक प्रेषणीय बनाने में कहावत-शिल्पियों को अभूतपूर्व सफलता मिली है। इस सफलता का प्रमुख कारण लोक जीवन के बीच से ही बिम्बों का चुनाव है, जिससे उनके चित्र सजीव, तीव्र, संवेदनशील तथा मार्मिक बन सके हैं।

कहावतों में उरेहे गये चित्रों के लिए सभी इन्द्रिय व्यापारों से सामग्री, सुगन्धि, रस और ध्वनि आदि एकत्रित की गई है तथा उनसे अपनी सधी हुई तूलिका व छेनी द्वारा कहावत शिल्पियों ने वे उभार और रंग भरे हैं, जो बोद्धा को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। इन चित्रों में कुछ सूक्ष्म हैं और कुछ स्थूल।

———

बुन्देली पहेलियों में गुम्फित त्रेतायुगीन धार्मिक कथाएँ

डॉ० कृष्णकुमार हूंका

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही कथा-कहानियों के देश के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यहां के लोग बड़े चाव से कथाएँ कहते एवं सुनते हैं। अधिकांश भारतीय कहानियों के बीज हमें वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत एवं पुराण आदि ग्रन्थों में मिलते हैं। पैशाची भाषा की 'बड्डकहा' (बृहत्कथा), संस्कृत का 'कथासरित्सागर', पालि भाषा की 'जातक कथाएँ' विशिष्ट प्रकार की लोक-कथाओं की श्रेणी में गिनी जाती हैं। इसके अतिरिक्त 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पंचविंशति' (बैताल पच्चीसी), 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' (सिंहासन बत्तीसी), 'शुक-सप्तति' (शुक सत्तरी), 'किस्सा तोता मैना का' 'किस्सा हातिम-ताई का', 'गंगाराम पटेल एवं पूत बलाखीराम नाई की कहानियाँ', 'तीन लाख की तीन बातें' एवं 'आल्हा-ऊदल' आदि कथाएँ भारतीय लोककथा साहित्य की अमूल निधि मानी जाती हैं। जैनों का प्राकृत साहित्य तो पूरा ही कथा-कहानियों से भरा पड़ा है, इसीलिए पाश्चात्य विद्वान डा० विन्टरनित्ज ने इसे 'श्रमणकाव्य' कहा है। पहेली कथाएँ भारत के अतिरिक्त यूरोप एवं अफ्रीका में भी लोकप्रिय रही हैं।

भारत में कुछ वर्षों से लोककथा-कहानियों का प्रान्तीय एवं जनपदीय स्तर पर संकलन एवं अध्ययन किया जा रहा है। बुन्देलखंड जनपद भी इस कार्य में पीछे नहीं है। पं० शिवसहाय चतुर्वेदी ने अनेक बुन्देली कहानियों का संग्रह किया है जिसका समय-समय पर 'मधुकर' तथा अन्य जनपदीय पत्रों में प्रकाशन हुआ, किन्तु बुन्देली पहेलियों में जो अन्तर्कथाएँ

छिपी हैं, उनको प्रकाश में लाने का अभी तक उद्यम नहीं हुआ था, उसे ही मैं विनम्रता पूर्वक प्रस्तुत करने जा रहा हूँ।

(१) त्रेता युग से संबंधित बुन्देली पहेलियाँ

हिन्दू धर्म की दृष्टि से त्रेता युग भगवान रामचन्द्र जी के शौर्य एवं आदर्श की प्रतिष्ठापना का युग कहलाता है, जिसमें समाज में धर्म एवं मानवीय आदर्श की प्रतिष्ठा हुई। अतएव इस युग से संबंधित बुन्देली पहेलियों में तत्कालीन धार्मिक आदर्श स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। इस युग से संबंधित पहेलियाँ श्रवणकुमार द्वारा अपने अंधे माता-पिता को कंवर में लेकर तीर्थाटन कराने, कैकेई द्वारा राम-वनगमन हेतु राजा दशरथ से वर माँगने, राजा दशरथ की मृत्यु, लक्ष्मण-रेखा, सीताहरण, लंका से सीता द्वारा राम को सन्देश भिजवाने, राम-रावण युद्ध, अहिरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को पताल ले जाने, हनुमान द्वारा मकरध्वज से लड़ाई, मुनि-आश्रम में कुश का जन्म आदि प्रसंगों को संजोये हुए हैं।

श्रवणकुमार द्वारा अपने अंधे माता-पिता को तीर्थाटन करने से संदर्भित कथा-पहेली इस प्रकार है—

> दो पग चलें, चार लटकाबें, सुनो परोसन बैना।
> ऐसो भओ न हूहै आगे, तीन मूंड़ दुई नैना।

उक्त पहेली में एक सखी अपनी पड़ोसिन से पूछती है कि दो पैर चलते हैं और चार पैर लटके हैं, किन्तु ऐसा कभी न हुआ, न आगे होगा कि तीन सिर और दो आँखें एक साथ हों, बताओ वह क्या है?'

समस्या वास्तव में गूढ़ है। हर सखी इसका हल नहीं खोज सकती, किन्तु बुन्देलखण्ड जनपद की नारी कब पीछे रही? उसने समस्या का हल इस प्रकार निकाला——श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिता को तीर्थाटन करने के लिए कंधे पर कांवर में बैठाये लिये जा रहे हैं, इसलिए दो पग श्रवणकुमार के चल रहे हैं तथा उसके माता-पिता के दो दो पैर अर्थात् चार पैर कांवर में से बाहर लटके हैं।

एक पहली में कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से राम-वनगमन का वर मांगा गया है, जिसके कारण पुत्र-वियोग में राजा दशरथ की मृत्यु हो गई। तत्संबंधी बुन्देली पहेली इस प्रकार है——

> बर मांगन बर पै गई, बर पायो तत्काल।
> बर पायो बेबर भई, पण्डित जू करो बिचार।

अर्थात् बर (वरदान) मांगने वह (रानी कैकेई) बर (पति) के पास गई और उसने वर (वरदान) तुरन्त पा लिया, किन्तु बर (वरदान) पाते

ही वह बरहीन (पतिहीन) हो गई। कैकेई द्वारा अपने पति राजा दशरथ से राम के लिए वनवास मांगने की यह कथा सुप्रचलित है।

तीसरी पहेली 'लक्ष्मण-रेखा' प्रसंग से संबंधित है--

'आड़ी पै परी पै देवें कैसे'। पहेली का शाब्दिक अर्थ है कि कोई चीज आड़ी पड़ी हुई है, इसलिए कोई (वस्तु) कैसे दें। पहेली का कथा-सूत्र इन्हीं 'आड़ी' और 'दें' 'शब्दों में छिपा हुआ है, जिसे विवेकीजन ही जान सकते हैं। यह आड़ी रेखा मंत्रशक्ति युक्त लक्ष्मण-रेखा है, जो दुश्मनों से सीता के रक्षार्थ लक्ष्मण द्वारा डाली गई है। पूरा प्रसंग सर्वविदित है।

इसी प्रकार सीता-हरण के प्रसंग को निम्नलिखित पहेली अपने भीतर आत्मसात किए हुए है--नींबर चोर उर जबर पारूआ भीतर चोर नईं आया।

धनी कहे मोरौ सरबस लै गओ, घर में नइया माया।

पहेली में पूछा जाता है कि पहरा जोरदार है, किन्तु चोर कमजोर है, इसलिए वह भीतर नहीं आ सका फिर भी धनी (घर का स्वामी) कहता है कि मेरा सर्वस्व चला गया, क्योंकि घर में माया अर्थात् सीताजी नहीं है। पहेली में नींबर चोर रावण के लिए, जबर पारूआ शब्द लक्ष्मण-रेखा के लिए तथा धनी शब्द गृहस्वमी राम के लिए एवं माया शब्द सीताजी के लिए संकेतार्थ प्रयुक्त हैं।

सीता रास को अपने अपहरण की सूचना भेजती है तथा अपनी मुक्त की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग को निम्नलिखित पहेली एक अन्तर्कथा के रूप में व्यक्त करती है--तुला तुला कौ वैर है कुम्भ कों लै गओ चोर।

बृस रास पोंचाइयो मेखैं डारै टोर।

पहेली में प्रथम तुला शब्द राम के लिए, दूसरा तुला शब्द रावण के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह कुम्भ शब्द सीता के लिए, बृस-रास शब्द बन्दर अर्थात् हनुमान के लिए तथा मेखैं शब्द शृंखला (चोटी) अथवा बंधन के लिए प्रयुक्त हैं।

सीता का सन्देह मिलने पर राम अपने भाई लक्ष्मण, परमसेवक हनुमान तथा उनकी वानर सेना के साथ असुर रावण से युद्ध करने गए और वे रावण को परास्त कर सीता को बन्धनमुक्त कर स्वाभिमान के साथ वापस लाए। राम-रावण-युद्ध से संबंधित इस कथा-प्रसंग को निम्नलिखित बुन्देली पहेली अपने शब्द-संकेतों द्वारा प्रकट करती है—

तुला तुला पै चढ़ गओ, लै बृस-रास कों संग।
कुंभ रास कों बांध कैं, करक कियो है भंग।

अहिरावण द्वारा राम और लक्ष्मण को पाताल-लोक ले जाने की क्षेपक-कथा निम्नलिखित पहेली में व्यंजित है—

गेर गेर बारी लगी, भीतर बिड़े ढोर।
ढोर ढोर सबरे बंध, खूंटा लै गयो चोर।

उक्त संकेतों द्वारा पहेली का शाब्दिक लघु अर्थ इस प्रकार बनता है कि हनुमान की पर्वताकार पूंछ के अन्दर सहायक वानर सेना घुसी हुई है। सम्पूर्ण बानर सेना तो जहाँ की तहाँ है, किन्तु राम व लक्ष्मण को चोर चुरा ले गए। कहना न होगा कि खूंटा शब्द राम व लक्ष्मण के लिए तथा चोर शब्द अहिरावण के लिए संकेत रूप में प्रयुक्त हैं।

इस कथा से आगे की कथा पर प्रकाश डालने वाली पहेली भी बुन्देली में प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है--

लागी दन्त दतौड़ा सें, तीनों घुस गए जोड़ा सें।
फिर लागी दन्त दतौड़ा सें, तो तीनई निकरै जोड़ा सें।

यहाँ पर 'लागी दन्त दतौड़ो सें' से तात्पर्य मकरध्वज एवं हनुमान की लड़ाई से है तथा 'तीनों घुस गये जोड़ा सें' का अर्थ मकरध्वज एवं मालिन से हैं एवं 'तीनई निकरे जोड़ा सें' से तात्पर्ण राम, लक्ष्मण एवं हनुमान से है। कथा बहुत लंबी है, संक्षेप में यह है कि जब अहिरावण छलपूर्वक राम लक्ष्मण को अपहरित कर पाताल-लोक ले गया, तब हनुमानजी दोनों भाइयों की खोज में पाताल-लोक पहुँचे। वहाँ मकरध्वज नाम का बानर द्वारपाल था। वह हनुमान को देखकर क्रोध से बोला—तू मेरा निरादर करता है। तुझे मेरा डर नहीं ? इसे सुन मकरध्वज और हनुमान लड़ने लगे, दोनों में घमासान युद्ध हुआ। हनुमान को लगा कि इससे तो विलंब ही हो रहा है, तब वे मकरध्वज को अपनी पूंछ में बांधकर राम-लक्ष्मण की खोज में चल पड़े और उन्होंने देखा कि अहिरावण देवी को प्रसन्न करने हेतु राम-लक्ष्मण की बलि देने को तैयार है। इसे देख हनुमान मेघ के समान गरजे, जिससे सारे राक्षस भयभीत हो गए। क्षण भर में हनुमान जी दोनों भाइयों को उठाकर राक्षस समुदाय को मारने-काटने लगे और उन्होंने समूचे असुरों का संहार कर डाला। अंत में हनुमान जी ने अहिरावण की तलवार छीनकर उसका भी संहार किया और दोनों भाइयों को लेकर पाताल-लोक से चल पड़े।

एक अन्य बुन्देली पहेली कुश-जन्म पर प्रकाश डालती है जो इस प्रकार है--निरदंदी के दंद भवो, बिना दांत के हँसी।

बाप बिना लरका भवो, बऊ घरै न हती।

पहेली में कहा गया है कि निर्द्वन्द के यहाँ द्वन्द हुआ और बिना दांत के हँसी हुई, पिता के बिना पुत्र हुआ, जबकि माँ भी घर में नहीं है। इस विरोधाभासी संकेतों से प्रश्न गूढ़ हो जाता है क्योंकि निर्द्वन्दी अर्थात् माया-

संसार से रहित व्यक्ति को द्वन्द अर्थात् माया संसार से क्या प्रयोजन ? बिना दांतों के हँसो भी कैसी और पिता के बिना पुत्र का जन्म कैसे संभव, यह भी जब माँ घर पर न हो ?

उक्त प्रश्न-संकेत कुश की जन्म-कथा को उद्घाटित करते हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार है – सीताजी को जब राज्य से गंगापार वन में अकेले छोड़ दिया गया, तब वे उस सुनसान एवं डरावने वन को देखकर विलाप करने लगीं। इतने में एक मुनि घूमते हुए उधर से निकले। इस पर सीता ने मुनि को पहचान कर अपने वन आने का दृष्टांत सुनाया। सारा वृत्तान्त सुनकर मुनि ने सीता को धैर्य बँधाया और आदर सहित उन्हें अपनी पर्णकुटी में ले गए। मुनि नित्य की भाँति अपने पूजा-पाठ में लगे थे। सीता को पानी भरने जाने था, इसलिए पुत्र लव को पूजा वाले स्थल के पास रख कर वह पानी भरने चली गई। थोड़ी दूर चलने पर उन्होंने सोचा कि बालक के रुदन से मुनि की पूजा में विघ्न पड़ेगा, उसे साथ ले जाना ही श्रेयस्कर है। अतएव वे बालक को उठाकर साथ ले गईं उस समय मुनि ध्यानमग्न थे, वे देख न सके। जब उनका ध्यान पूरा हुआ, तब उन्होंने देखा कि बालक स्थल पर नहीं है, अतएव उन्होंने सोचा कि लौटने पर बालक की अप्राप्ति पर उसकी माँ दुःखी एवं चिन्तित होगी। इसलिए मुनि ने पूजा की सामग्री में पड़े एक कुश को उठाकर उसका बालक बनाया और अपनी मंत्रशक्ति से उसमें प्राणप्रतिष्ठा की, जिससे कुशनिर्मित बालक जी उठा। इसी बालक का सीता ने लव के साथ पालन किया और यह कुश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुश-जन्म की यह कथा उपरोक्त पहेली में पूरी तरह सही उतरती है, क्योंकि माया संसार से रहित मुनि के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ अर्थात् माया-संसार ने जन्म लिया। वह बालक हँस रहा था, किन्तु उसके दाँत नहीं थे तथा वह बालक बिना पिता के उत्पन्न हुआ और यह भी सही है कि तब माँ घर पर नहीं थी।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बुन्देली पहेलियाँ त्रेता युग की धार्मिक अन्तर्कथाओं को अपने में आत्मसात् किये हुए हैं, जिन्हें प्रकाश में लाने के लिए 'पण्डितजू' याने विवेकीजनों की जरूरत है।

पाठकों को यह जानकारी देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि बुन्देली पहेलियों में इसके अतिरिक्त द्वापर युग से संदर्भित कथा-प्रसंग भी प्राप्त होते हैं। साथ ही सामाजिक जीवन एवं हास-परिहास संबंधी लोक-कथाएं भी बुन्देली पहेलियों में गुम्फित हैं, किन्तु इस सबका विश्लेषण यहाँ संभव नहीं है।

पाठ-निर्धारण

डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

[बुन्देली फागों की प्रकाशित पुस्तकों में फागों का जो पाठ मिलता है, वह या तो मौखिक परम्परा से प्राप्त जैसा का तैसा रख लिया गया है या सम्पादकों और संकलनकर्ताओं ने उसमें मनमाना परिवर्तन कर दिया है। कहीं-कहीं तो अर्थ का अनर्थ हो गया है। यहाँ हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कुछ फागों का पाठ-निर्धारण प्रस्तुत किया गया है। इस स्तम्भ का उद्देश्य रचनाओं का सही पाठ निर्धारित करने की प्रेरणा देना है ताकि बुन्देलखण्ड का साहित्य भ्रष्ट परिवर्तनों से सुरक्षित रह सके और उसका सही रूप सामने आ सके। विद्वान सम्पादकों के पाठ-निर्धारण आमंत्रित हैं।]

जिनके भर गये भुअन[१] परागन, लगै[२] आग सौ[३] आँगन।
त्रिबिध समीर तोप[४] से तोफा[५] चँऊ[६] दिस लागे दागन।
कोकिल कीर तीर से चोखे जी बेधत बेलागन।[७]
सुद[८] समसेर खिंची जा[९] जिनपै[१०] बचै सो पिय के भागन।
घर ना कंत बसन्त ईसुरी परे बादसा[११] बागन॥
जोतें रजउ के मौं की जागें, चकचोंघें[१२] की लागें।
कौंदन लगी बिजुरिया[१३] कैसीं स्याम घटा[१४] के आगें।
छूटत छटा अटा के ऊपर देखत रबि रथ भागें।[१५]
कहीं तीन सौ आठ ईसुरी रजउ रजउ की फागें॥[१६]

पाठान्तर—१. भवन (ना, द) २. लगत (गो, कृ) ३. सम (गो, कृ) ४. तुबक (ना, द) ५. तोपा (गो, कृ) ६. दिस (गो) चहुँ (द, कृ) ७. यह पंक्ति ना, द, दा, ज प्रतियों में है; जबकि गो, कृ में केवल चार चरण हैं। ८. सम (गो, कृ) सुध (ना) ९. है (गो, कृ) १०. जिनमें

(गो, कृ) ११. बादसाह (कृ) १२. चकमोंदी (गो, कृ) १३. लागी बिजरी (गो, कृ) १४. पटन (ना, द, दा) १५. सूरज अटा छटा पै छूटे देखत ही रथ भागें (गो, कृ) १६. द, दा प्रतियों या पंक्ति-क्रम में दूसरी है।

टिप्पणी--गो = पं० गौरी शंकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ईसुरी प्रकाश और कृ = श्रीकृष्णनंद गुप्त द्वारा सम्पादित ईसुरी का फागें प्रकाशित हैं। शेष प्रतियां द, दा, ना, ज हस्तलिखित हैं और उनका लिपिकाल संवत् १६५३ से सं० १९७७ तक का है।

[सम्पादक के शीघ्र प्रकाश्य ग्रंथ ईसुरी का फागु काव्य से साभार।

————

लघुकथा

मुझे नहीं मालूम

महाविद्यालय में चल रही खेलकूद प्रतियोगिता में छात्रों के प्रदर्शन का स्वागत दर्शक तालो बजाकर कर रहे थे। ऊँची कूद के लिए दौड़ती एक छात्रा का पैर अचानक फिसल पड़ा और वह गिर पड़ी। ठीक उसी क्षण भौतिकी विभाग की तरफ से एक सीटी की आवाज ने दर्शकों को बरबस हँसा दिया।

'क्या बदतमीजी है⋯?' प्राचार्य चीख पड़े और नौकर को बुलाकर आदेश के स्वर में बोले—'देखो' कौन है विभाग में ?'

नौकर ने लौट कर बताया कि एक प्रयोगशाला-सहायक काम कर रहा है। प्राचार्य चुपचाप उठकर चले गए। कुछ ही क्षणों में प्रयोगशाला-सहायक के हाथ में एक कागज पहुँच गया, जिसमें लिखा था–' ⋯इस अशिष्टता के लिए क्यों न आपको निलम्बित कर दिया जाय⋯।'

प्राचार्य अपने कक्ष में बैठे कुछ प्राध्यापकों से इसी घटना की चर्चा कर रहे थे। रोष से तमतमाये। तभी एक कागज उनके समक्ष प्रस्तुत हुआ, जिसमें लिखा था—'⋯कल होने वाले वार्षिकोत्सव के लिए मैं एम्प्लीफायर टैस्ट कर रहा था कि अचानक उससे सीटी की आवाज निकल पड़ी। मैदान में कब क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम⋯।'

आचार्य ठहाका लगाकर हँस पड़े और प्राध्यापक उनके मुख की तरफ हैरानी से देखते रहे।

— हरिसिंह घोष

दिन ललित बसंती आन लगे

•

(१)

सारी ओढ़ बसुधा बधूटी नव पल्लव की,
पुष्पित प्रसून पीत भूषण सजाये हैं।
मौर मंजरीन के लतान के वितान तने,
मुदित मलिन्दनीन मंगलीक गाये हैं।
कुंदन की झालरें पताका त्यों पलाशपुंज,
मृदु मकरंद की सुगंधन सनाये हैं।
कवि 'हरिदेव' कल कोकलादि वेद पढ़ें,
ओजवंत ब्याहन बसंत आज आये हैं॥

--रामनाथ गुप्त 'हरिदेव'

(२)

मकरंद अमंद लुटाता हुआ यह मत्त गयंद-सा आ रहा है।
शव में शिव का भरता हुआ भाव अभाव कुभाव भगा रहा है।
अवगुण्ठन खोल विभावरी का कर पल्लवों से दुलरा रहा है।
वसुधा वधू का यह कंत बसंत दिगंत से दिव्यता ला रहा है॥

—राम शरण दीक्षित 'सुमन'

(३)

दूला बन बसंत जू आयें, सकल बरात सजायें।
झूम झूम कें भौंरा मद में स्वागत गीत सुनायें।
हाली फूली प्रकत दुलैया हरदी अंग चढ़ायें।
को है को है पूँछै कोइल जब प्रीतम घर आयें॥

--लल्लूमल चौरसिया

(४)

बासन्ती धूल उड़ी बौराया गाँव
संयम के आँगन में फिसल गया पाँव।
सपने सब झुरमुट में कैंचुली उतार
जा बैठे मनमारे संयम से हार
द्वारे जो आन खड़ी सतरंगी छाँव।
रसभीनी कोरों पर सपनों का भार
कातिक की पूनों सा दीयरा उजार
सन्यासी मन बैठा रूपक की नाँव।
सूने गलियारे की टूटी सी तान
मन आँगन उतरी औ झझकोरे प्रान
टूटे तन मन को अब दिखता न ठाँव।

—व्रजलाल मिश्र

(५)

गंधवती धरती का सजा सजा गात
अंग अंग पुलक रहा यौवन का प्रात।
वृंत वृंत खेल रहे किसलय के लाल
मंजरि की गोदी में डोलते रसाल।
पात पात झंकृत है जैसे मंजीर
महुओं के घुंघरू भी हो चले अधीर।
भरे भरे खेतों के आँगन खलिहान
अर्थ-शास्त्रियों के ज्यों आकलन-विधान।
विहर रहे मधुबन में कोयल के बोल
माधव की मुरली का लजा गया मोल।
सुमनों के नंद रचें गंधों के छंद
नूतन है भाष्यकार पवन मंद मंद।
भौरा ज्यों गोप बड़ा अनुशासनहीन
कली कली गोपी का गोरस ले छीन।
पुष्पकरिणी-पुस्तक में कमलों के पृष्ठ
शाकुन्तल नाटक सा करते आकृष्ट।
सरसों का वासंती झीना परिधान
टेसू ज्यों सुषमा में लाज का विहान।

ऋतुपति की पिचकारी में भरी उमंग।
बगिया की अँगिया पर छिटक गया रंग।

—श्रीनिवास शुक्ल

(६)

जे फागुन के दिना और आँगन में खिली जुंदइया
नये निकोरे जोरा में जैसें हँस उठी दुलइया।
झर रये पात पुराने पीरे, लपटें बिरछा भूनें
जैसे चले चैतुआ चैतै, गाँव पुरा कर सूनें।
फूटे नन्नइयाँ से पीका, हँस हँस दाँत दिखावे
कलई काल में नाती जैसे आजी से बुलयावें।
नेवरे आम लदे बौरन से जोबन ना ढो पावें
जैसे नई बऊ भुंसारें दूनर हो हो जावें।
नौनी वास पुरा ने बाँटी, गैलारें बतरावें
देवरा और नन्द मिल दोऊ भौजी खों पुटयावें।
देख भरी गदराई बालें, हँसे किसान-मजूरा
हरी नई सारी पै जैसें बिन्नू मटकें चूरा।
नदिया की ढी पै हँस बालें पानी में लफ जावें
गोरी जैसे इतरा कें ऐना में खुद ललचावें।
बैरन बैर गंजाबें, छेवले अंगरा से दहकावें
गोरी के गालन खों जैसें छैला छी छी जावें।
तुअर हँसे खेता में फूलै फलवै औ किलकावै
बालम के दए गोरी जैसें कनफूला चमकावै।
उड़ उड़ सुआ पिसी की बालें चोंचें मार उगारें
फगवारे जैसे भौजी के घूँघट में रंग डारें।
हारन हारन कोयल कूकै मन हिरना गरिबें
हुरयारे रोजऊँ अथाइ पै बैठ कबीरा गावें।
गर्रा उठी उनारी खेतै ऐंड़ा के लहरावै
मूड़ ऊनाकें गोरी जैसें फरके बार सुखावै।
नये नये फूल बगीचें फूले नये नये रूप दिखावें
देव उठे पै जैसे घर घर नई बडयें मुसकावें।
रातें जल्दी कटें कै दिन लमछारे होन लगे हैं
जैसे देवर लफंगा घूँघट की ढिक तकन लगे हैं।

बादर-धरती पैता छाये टप टप बगै पसाना।
साँसऊँ जैसे मँहगाई में बड़ो कठन भओ जीना।

कैलाश मड़बैया।

(७)

कोइलिया रई बोल बोल सुन जियरा डोलत है
बातें करत समीर भेद मोरे मन को खोलत है
आमन मोर दिखान लगे / रितुपति बसंत सखि आन लगे
मन में मनमथ जोर करत है, सजनी जियरा मोर जरत है।
घोरे नारे खेत सलौने खेतन नोनी सरसों फूली
बोलत मोर पपीहा पिउ नै मोरे मन की पीरा छू ली
फूलन संग भौंर बिहार करें / लिपटे कलियन सँग प्यार करें
कली अली को संग देख मन धीरज नाहिं धरत है।
पीरे पट पैरें ठाँड़े हैं झूमत जामुन आम अचरवा
महक रई कोंकार करौंदीं झुरमुट झील झुरइयन नरवा
घनी करौंदी की छइयाँ / छइयाँ में घामो नइयाँ
है नइयाँ सइयाँ घर गुइयाँ को जा पीर हरत है।
बेरन पै होरा डारें है पौ फटतन सूरज की लाली
मुक्ताहल नभ के बटोर कें भर गई है सूरज की थाली
किरनन नै हाँत पसारे हैं / पंकज नै नैन उधारे हैं
बाहु पास सें छूट चले अलि इन उत गान करत हैं।
ना जाड़े ना घाम मजे के मनमोहक मौसम मतवारे
मतवारे प्यारे मौसम में मन में करत मनोज दवारे
महके दिन गोरी रातन / मन उलझो उनकी बातन
उनके बिन जा रात निगोड़ी जुग सम जान परत है।
चली बसंती हवा अवा सी परच रई बिरहा में छाती
बातन घात बिदर्दी कर गये आयें ना पठवा दई पाती
मन की पीर न कई जावै / घरकें मन धीर न सई जावै
कई जावै ना बात उतै उनके को कान भरत है।
टोली छैल चिकनियन की होरी की बोली बोलन लागी
गालन मलत गुलाल लिपट कें पट घूंघट के खोलन लागी
कोउ परोच्छ में टेरत है / टेरत कोउ तिरछो हेरत है
हेरत जैसें और के धन खाँ जरुआ देख जरत है।

--राजा संतोषसिंह बुंदेला

(८)

महुआ-मेवा-बेर-कलेवा गुलगुच मन ललचाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

मुरका के प्यारे व्यंजन से कोई नहीं अघाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

गरम हुए कुछ सूर्य मकर के उत्तर दिशि की ओर सिधारे।
दशों दिशाएँ पुलकित मन से रश्मिरथी के चरण पखारें
शिखर समूहों पर किरणों ने स्वर्णिम पुष्प चढ़ाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

हल्दी की झीलों में झांकें सूर्यमुखी सिहों के छौने
वाणों की रेखा से उड़ते हलचल वाले हिरण खिलौने
मृगनयनी के मादकपन सा वातावरण सुहाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

लोकरंग बरसे हैं घर-घर ताने छिड़ीं तराने बिखरे
नाचे कमल कुशल पाटल पर रूप सलौने निखरे-निखरे
मानसरोवर मनो महावर सचमुच आज लगाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

मलयानिल से मुखरित होकर चर्चित है गाया चन्दन की
केशर गाती रही कीर्ति नित अमर शहीदों के जीवन की
केशरिया ये गीत सुनाकर कोई कवि बन जाये
बसंती तेवर बदले धरती ने।

—भैयालाल व्यास

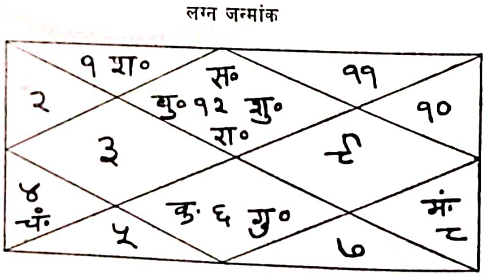


ईसुरी : एक पुनर्मूल्यांकन

डा० नाथूराम चौरसिया

बुन्देलखन्ड के जयदेव ईसुरी के जन्म के सम्बन्ध में; 'ईसुरी' पर कार्य करने वाले मूर्धन्य विद्वान श्री वीरसिंह जूदेव ओरछेश, श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', श्री रामचरण ह्यारण 'मित्र', डॉ० शंकरलाल शुक्ल, श्रीकृष्णानन्द गुप्त, श्री श्यामसुन्दर वादल, डॉ० कुलदीप, प्रो० श्रीचंद जैन और मिश्र बन्धुओं ने निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा। इन विद्वानों ने जन्म सम्वत् दिया भी है, लेकिन उनके पास कोई ठोस प्रमाण नहीं है। उन्होंने केवल अनुमान का ही सहारा लिया है। मुझे शोधकार्य के समय ईसुरी की जन्मपत्री तथा जन्म से सम्बन्धित एक रचना उपलब्ध हुई है, जो प्रामाणिक हैं।

लग्न जन्मांक



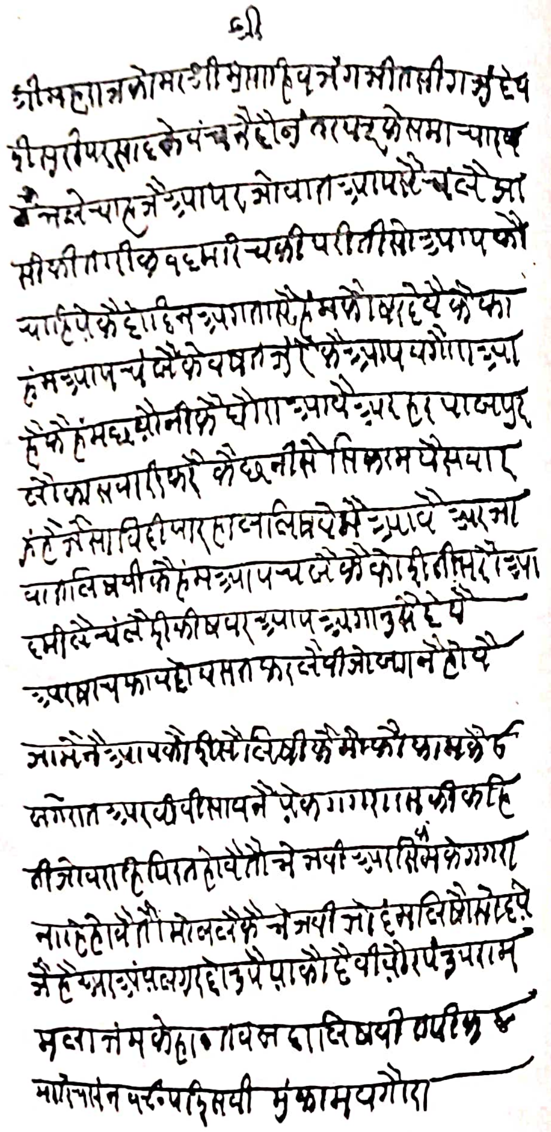
दोहा— सम्वत् अठारारी अन्ठान्वे, दिना हतो गुरूबार।
चैतगुदी दसमी रई, लओ ईसुर अवतार।

चौकड़िया— गुरू ने जैसो हमें सुनाओ, फाग बनाकें गाओ।
अठारा री अन्ठान्वे को, सुभ सम्वत् जब आओ।
चैतसुदी दसमी दिन गुरू को, भोले ने सुतपाओ।
गंगा उरसों उपजे ईसुर, "बाकर" सबहिं सुहाओ।

प्रस्तुत जन्मपत्रिका एवं रचना मुझे श्री राजाभैया बिजावर के सोजन्य से प्राप्त हुई। उनको भी यह महाराणा बिजावर श्री सावंतसिंह जूदेव के बावर्ची श्री बाकर खानसामा से प्राप्त हुई थी। श्री बाकर, श्रीजंगजीत सिंह जूदेव मुसाहिब (धवर्रा) के यहाँ ईसुरी के साथ कार्य करते थे, इसकी पुष्टि धवर्रा निवासिय एवं मुसाहिब जू के प्रपौत्र श्री भूपतसिंह तथा उनके द्वारा प्राप्त कागजातों से होती है। श्री खानसामा, ईसुरी को अपना गुरू मानते थे। वे तुकबंदी भी करने लगे थे। श्री बाकर सन् १९२० से १९४७ तक महाराजा बिजावर के यहाँ कार्यरत रहे। वे मौदहा (उ० प्र०) के निवासी थे।

उपर्युक्त जन्मांक और रचना का मेल ठीक बैठता है। इनसे ईसुरी की जन्मतिथि और माता-पिता के नाम।र स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। इस आधार पर हरलाल उर्फ 'ईसुरी' का जन्म चैत्र शुक्ल दशमी, दिन गुरुवार, सम्बत् १८९८ निश्चित होता है।

बाल्यावस्था में ही इनपर से इनके माता-पिता का साया उठने के कारण इनका बचपन इसके मामा लुहरगाँव निवासी श्री भूधर नायक के घर बीता। वहीं पर श्री जमुनाप्रसाद रावत की घरेलू पाठशाला में इन्होंने ग्रामीण जीवन में लिखने-पढ़ने और हिसाब-किताब करने के लिये आवश्यक बातें सीखीं। संक्षेप में उनकी यही शिक्षा थी। परन्तु उन्होंने इस सम्पूर्ण जनपद को पाठशाला मानकर लोकविषयक ज्ञान प्राप्त किया। वही ज्ञान और अनुभव उनकी फागों के माध्यम से साकार हुआ है किन्तु अल्पशिक्षा प्राप्त इनकी वाणी में अनूठा सम्मोहन और प्रभाव था, जिसके कारण इनके मित्र कहा करते थे कि इन्हें मोहनी मंत्र सिद्ध है। इनकी लोकप्रियता का आधार इनकी सरस, चुटीली तथा सुरीली और भावभरी वाणी थी, जो वरबस सबको अपनी ओर चुम्बक की भाँति खींच लेती थी। ईसुरी के आश्रयदाता श्री जंगजीतसिंह जूदेव मुसाहिब धवर्रा (हमीरपुर) के कागजात, जो कि ईसुरी के लिखे हुये हैं, देखने से विदित होता है कि इनको शुद्ध लिखना भी नहीं आता था। इनके लेखन का एक अंश प्रस्तुत है—


श्री

श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने ललितपुर निवासी पं० बिलासी पाठक को ईसुरी का दत्तक पुत्र स्वीकारा है। मैंने ईसुरी से सम्बन्धित सभी स्थलों की आवश्यकतानुसार यात्रा की और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि इन्होंने किसी को दत्तक पुत्र स्वीकार नहीं किया। बड़े भाइयों की संतान परम्परा से वे सन्तुष्ट मालूम होते थे, और जबकि उनके चार पुत्रियां थीं, तब पृथक से कोई दत्तकपुत्र बनाने का औचित्य समझ में नहीं आता। न ही इसका कहीं कोई प्रमाण मिला। इन परिस्थितियों में प्रायः हिस्सा-बाँट को लेकर वाद में झगड़े फसाद होते हैं, ऐसे झगड़े का भी कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता और न ही बिलासी पाठक के आगे कोई संतान सूत्र का पता चलता है। इस प्रकार ईसुरी के केवल चार पुत्रियाँ थीं, पुत्र कोई नहीं। आगे की वंश-परम्परा उनके भाइयों से चलती है।

ईसुरी के जीवन में दो नर्त्तकियों का नाम लिया जाता है, जो रंशरेजन के नाम से प्रसिद्ध थीं। ये दोनों सगी भगिनी थीं। बड़ी बहिन का नाम गंगिया जो पड़ुवा (हमीरपुर) तथा छोटी सुन्दरिया, जो रामनगर (टीकमगढ़) में रहती थीं। वे स्वयं जहाँ नाजने के लिये जातीं, ईसुरी की ही फागें गाती थीं। वे कुशल नर्त्तकी होने के साथ-साथ रूपवती भी थीं। ऐसा कहा जाता है कि ईसुरी इनके प्रति आकृष्ट थे। इन्हीं के सम्बन्ध की फाग देखिये—

नैना तरवारन सैं पैने, करे सामने तैंने।
घायल कर्दओ मुलक भरेखौं, ऐसी दई कीं दैंने।
प्रान हरन सुन्दरिया, गंगिया, एकई सीं दोई बैनें।
ऊसई पैने नैन तुमारे, कछु छलत हैं सैंने।
'ईसुर' कात सामने होकैं, सये ससन भर मैंने।

ईसुरी जब मुसाहिब जू के कामदार थे, तब इन्हें एक अपमानजनक स्थिति का सामना करना पड़ा। मुसाहिब जू के रूकमन नाम की एक परिचारिका थी, जिसने इनकी माँ नन्नाजू के आभूषणों का डिब्बा चुरा कर अन्यत्र रख दिया था। उनके कान भरनेपर ईसुरी को संदिग्धता का शिकार बनाया गया। उनको उल्टा करके नीम के वृक्ष की डाल से लटका दिया गया। यह विशाल वृक्ष आज भी उनके बाह्य प्रांण में अवस्थित है। ईसुरी को दुर्गा की सिद्धि होने के कारण उन्होंने नीम पर उलटे लटके-लटके ही निम्न पाठ पढ़ना प्रारम्भ किया—

रूकमन डवा काये न रानो, भेजो जेहल खानो।
जो खाजाय खेत खौं बारी, जेऊ इक बड़ो अलानो।

× × ×

५

मोरो जानो गओ न 'ईसुर' गओ रुकमन को जानो।

उपर्युक्त फाग सुनते ही ईसुरी को छोड़ दिया गया और रुकमन की खबर ली गई, तब चोरी गये आभूषण मिल गये। इस घटना के अनन्तर ईसुरी धवर्रा छोड़ कर ग्राम ठडेवरा निवासी भुन्दो माफीदार के यहाँ रहने लगे। इनकी निर्दोषिता सिद्ध होने पर धवर्रा निवासी पुनः वापस लाये, परन्तु स्वाभिमानी ईसुरी ने मुसाहिब जू के यहाँ कार्य नहीं किया। इसी आंतरिक द्वेष के कारण इन पर मुकदमा चलाये गये और तहसील निर्णय इनके पक्ष में हुआ।

ईसुरी व्यक्तित्व के धनी थे। बनावटीपन से वे कोसों दूर थे। नम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। इसी नम्रता के कारण वे जहाँ भी जाते समादृत होते। वे अपने हँसोड़ व्यक्तित्व के कारण सबको प्रसन्न रखने में पूर्ण दक्ष थे। नीतिपूर्ण उक्तियों को फाग के साँचे में ढालकर दोनों पक्षों को प्रसन्न करने में उन्हें कमाल हासिल था। विशेषता यह थी कि उनका अन्तर और वाह्य एक था। व्यक्तित्व की इसी सहजता के कारण वे सहज काव्य की सर्जना कर सके और अपनी अनुभूतियों को जन-मन की अनुभूति बना सके। इनकी फागों को इस जनपदीय जीवन के अनेक पक्षों का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। इनके वर्ण्य विषय दैनिक जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी घटनायें हैं। इनकी भाषा में भावानुकूलता के साथ सपाटबयानी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इनकी शैली भी हृदय की कोमल भावनाओं के व्यक्त करने के लिये अत्यंत उपयुक्त है। ईसुरी का उद्देश्य अपने प्रेम पात्र के प्रेम में उन्मत्त होकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये, मानस-भाव-रसामृत को फागों के प्रवाह में बहा देना है, जिससे सिक्त होकर जन-मानस में प्रेमांकुर प्रस्फुटित हो सके।

ईसुरी ग्राम्य संस्कृति के सच्चे पारखी थे। ग्राम्य संस्कृति का पूरा इतिहास इनकी फागों में मिलता है। इन्होंने लोकगीत की एक विशिष्ट विधा 'फाग' को अपनाया। वे चौकड़िया फाग के पुरस्कर्ता थे। फाग को इन्होंने बसंत ऋतु तक सीमित न रहकर प्रत्येक ऋतु में गायन योग्य बना दिया। 'राई' बुन्देलखण्ड का एक नृत्य है, जो होली के अवसर पर होता है। इनकी फागें इसी नृत्य के साथ गाई जाती हैं। इनकी फागों के नामी गवैया धीरे पण्डा थे। धीरे पण्डा के फाग का गाना और गंगिया एवं सुन्दरिया रंगरेजनों का नाचना इनकी फागों की प्रसिद्धि का प्रमुख कारण बना और इव सबने इनकी फागों के प्रचार में एक विज्ञापन का कार्य किया। ईसुरी ने हजारों उत्कृष्ट फागों की सर्जना की। इनको बुन्देली के महाकवि के पन पर प्रतिष्ठित करने

का एकमात्र श्रेय इनकी सरस तथा चुटीली फागों को ही है, जिन्होंने बुन्देली लोक साहित्य में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया।

ईसुरी जीवन की मस्ती के कवि थे। जीवन के बसंत का मद, उन्मुक्त-यौवन, मान्सलता और दैहिक सौन्दर्य की बहुरंगी अभिव्यक्ति इनकी फागों में मिलती है। वे मदन महीप के चारण थे। भक्त में अपने इष्टदेव के प्रति आसक्ति की जो मात्रा हो सकती है, वही भावना इनमें कामदेव के प्रति है। इनकी फागों में शृंगार रस की अविरल धारा उद्दामवेग से प्रवाहित हुई है, जिसकी मस्ती में सब कुछ डूब गया है। इनकी 'रजऊ' सौन्दर्य की अधिष्ठात्री हैं। वह शिख से लेकर नख तक सुन्दर है। विधाता ने उसका निर्माण करते समय मानो समस्त पूंजीभूत सौन्दर्य लुटा दिया हो। एक फाग दृष्टव्य है, जिसमें रजउ के सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण हुआ है।

पतरे सोने कैसे डोरा, रजउ तुमारे पोरा।
बड़ी मुलाम पकरतन धरतन, लग न जाय मरोरा।
पौराउत में दइया दइया, दावत परँ ददोरा।
रतन भरे से भारी हो गये, पैरन कंचम बोरा।
'ईसुर' कऊँ कां देखे ऐसे, नर-नारी के जोरा।

ईसुरी ने नायिका के सौन्दर्य को अत्यंत रमणीय और आकर्षक बनाया है। नायक के हृदय में प्रेमोत्पन्न करने एवं प्रेमोन्मादक बनाने के लिये सौन्दर्य को अनेक प्रकार के हावों से अभिमंडित कर अपनी पूर्ण रसिकता का परिचय दिया है। प्रेम में प्रेमी, प्रेमिका को सदैव अपने समीप चाहता है। थोड़ा सा विछोह उसे असह्य हो जाता है। उनका नायक उस भ्रमर की भाँति है, जो हर कली के निकट रसपान करने हेतु मंडराता रहता है। यहाँ तक कि उसे घरों की दूरी खटकने लगती हैं। फिर तो नायिका के दरश के लिये नायक चकरी बन जाता है। डोरा में बँधी हुई चकरी अँगुली के संकेत मात्र से आती है और तुरंत लौट जाती है, ठीक वही स्यिति नायक की भी हो रही है। देखिये—

हमसों दूर तुमारी बखरी, रजउ हमें जा अखरी।
फिर आवै फिर जावै 'ईसुर', भओ फिरत है चकरी।

प्रिय की कोई वस्तु आन्तरिक तन्मयता के कारण ऐसी प्रतीत होने लगती है, मानो स्वयं प्रिय मिल गया हो। उस वस्तु पर प्रेमिका अपने प्रेमी की भावना का प्रक्षेपण कर लेती है। दर्शनों की प्यासी प्रेमिका कह उठती है कि

यदि मेरा प्रेमी 'छल्ला' बनकर मेरी अँगुली में रहता, तो कितना अच्छा होता।

जो तुम छैल छला हो जाते, परे उँगरियन राते।
मौं पोंछत गालन खों लगते, कजरा देत दिखाते।
'ईसुर' दूर दरस के लाने, ऐसे काये ललाते।

वस्तुतः ईसुरी के काव्य में व्यक्त प्रेम, वासनापरक और ऐन्द्रिय ही अधिक है। संयोग के अतिरिक्त विप्रलम्भ के भी अनूठे चित्र इन्होंने अंकित किये हैं। इनका वियोग-वर्णन अधिकांश रीति कालीन कवियों से होड़ ले सकता है। अनेक बातों में तो वे उनसे आगे भी बढ़ गये हैं। इनकी फागों में वियोग-जनित नायिका के अतिरिक्त वियोग-व्यथित नायक के मन की छटपटाहट भी देखने को मिलती है। इनकी परकीया नायिकायें रात्रि में परदेशी के साथ सोती हैं और प्रातः उसके चले जाने पर हिलक-हिलक के रोतीं भी हैं, तो स्वकीया-नायिकायें पति के परदेश गमन से व्याकुल हो उठतीं हैं। इनकी अधिकांश फागों में अश्लीलता की प्रधानता है। परन्तु यह अश्लीलता ग्राम्य संस्कृति में अश्लीलत्व दोष के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकी। क्योंकि यह जीवन की यथार्थता है। लोक उनको गाकर ठीक उसी प्रकार की आनंदानुभूति करता है, जिस तरह आध्यात्मिक फागों में भी व्यक्त होती है। इस प्रकार उनकी फागों में रूप सौन्दर्य के अंकन से लेकर सम्भोग के अश्लील चित्रों तक का पूरा-पूरा आनंद उपलब्ध होता है। वस्तुतः लोक काव्य में जहाँ रूप सौन्दर्य, मिलन और क्रीड़ा के विविध प्रसंगों में तीव्र ऐन्द्रिक उत्तेजन मिलता है, ठीक उसी तरह सम्भोग और विलासपरक अनुभावों से अनावृत्त दृश्य मिलते हैं। यही कारण है कि उनके फाग मुक्तकों में खुले दृश्यों की अधिकता है। नागरीय संस्कृति से बोझिल एवं दमित भावनाओं से कुंठित, संयत, शालीन एवं नियंत्रित वासना के परिष्कृत वर्णनों को लोक काव्य में अवकाश कहाँ? इसलिये फागों को अश्लील कहलाने वाले विद्वानों से मेरा आग्रह है कि वे लोक मानस और और लोक संस्कृति की गहराई में पैठ कर अवलोकन करें, तब उन्हें लोक से तादात्म्य स्थापित होने पर, लगाये हुये अनेक आरोप यहाँ अपने आप असिद्ध हो जाते हैं।

बुन्देल खण्ड के लोककाव्य में मध्यकालीन उत्थान के निर्माण का सर्वाधिक श्रेय ईसुरी को है। वस्तुतः वे क्रान्तिकारी कवि थे, जिन्होंने बुन्देलखण्डी लोक काव्य धारा में आमूल-चूल परिवर्तन किया। उन्होंने बुन्देली लोक-साहित्य को जो दिया, वह न केवल बुन्देलखण्डी लोक गीतों में अपितु हिन्दी के लिये भी एक गौरव की बात है। उनकी सहस्रों अनमोल विविध विषयक

फागों से बुन्देलखण्डी लोकगीत साहित्य तो धन्य हुआ ही है, हिन्दी के अनेक शिष्ट साहित्यकारों को भी बुन्देली में काव्य-सर्जना करने की दिशा मिली। उन्होंने जो नई दिशा प्रदान की, उसका अनुसरण आज तक हो रहा है। मध्यकालीन लोक साहित्य में ईसुरी का स्थान ऐतिहासिक और साहित्यक दोनों दृष्टियों से शीर्ष का माना जावेगा। इतना ही नहीं प्रभाव की दृष्टि से यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि वे मध्यकाल के होते हुये भी आधुनिक बुन्देली काव्य के प्रेरक और जनक थे। जन-मन के कंठहार 'ईसुरी' की फागें बुन्देलखण्डी जन-मानस में जब तक यौवन और उल्लास रहेगा, तब तक गाई जातीं रहेंगी।

कवि जगतनन्द और 'उपखाने सहित दशम स्कन्ध चरित्र'

कामता प्रसाद सड़ैया

[इस स्तम्भ के अंतर्गत एक अज्ञात कृति का संक्षिप्त परिचय और उसका प्रमुख अंश प्रत्येक अंक में प्रकाश्य है। परिचय में प्रारम्भ और अन्त की पुष्पिकाएं एवं उनके साथ एक-दो छंद की फोटोस्टेट प्रतियाँ ब्लॉक के लिए भेजी जा सकती हैं। शोधकर्त्ताओं से सहयोग का अनुरोध है।]

दतिया-नगर की हस्तलिखित ग्रन्थ-परम्परा में संवत् १९१० वि० के दो-चार वर्ष आगे-पीछे के हस्तलेख में 'उपखाने सहित दशम स्कन्ध चरित्र' नाम की एक दुर्लभ काव्य कृति उपलब्ध है, जिसके आरम्भ और अन्त के छंदों तथा अन्त में लिखी संक्षिप्त पुष्पिका में इसके रचयिता कवि के 'जगतनंद' और 'जक्तनंद' नामों का उल्लेख है आरम्भ इस प्रकार है :—

"श्री गणेशायनमः। उपखाने सहित दसम स्कंध लीला॥
सौ बातन की बात भजौ श्री वीठलनाथहिं।
गोकुलनाथ सनाथ राख विठल मम पाथहिं॥
श्री गोवर्धन ईश गुरून के चरन मनाऊँ।
उपखाने लिय साथ दशम की लीला गाऊँ॥
गाऊँ गुन गोपाल के, जगतनंद विख्यात।
भज ले कृष्ण चरित्र कौं, हो बातन की बात॥१॥"[१]

हिन्दी के प्राचीन कवियों के प्रथम परिचायक ग्रंथ 'शिवसिंह सरोज' में कवि जगनंद का परिचय इस प्रकार दिया गया है :—

"जगनंद कवि। वृन्दावनवासी। सं० १६५८। इनके कवित्त हजारा में हैं।"[२]

इसी ग्रन्थ में कवि का यह कवित्त भी संकलित है :—

जौलौं तेरी आव, तौलौं हरिकी शरण आव,
करिले उपाव, कृष्ण नाम में अटकिजा।
बन्यौ तेरो दाव, चित चाव अति भाव ही सौं,
गोवर्धन रूप माधुरी गटकिजा॥
ममता बहाय, काम क्रोध कों दहाय,
प्रेम पंथ ही में आय, दुख दुंद को पटकिजा।
कहै जगनंद, काहे होति मतिमंद, अब—
छांड़ि सब फंद, ब्रजभूमि को सटकिजा॥"[३]

हिन्दी के अन्य किसी संदर्भ-ग्रंथ में इस कृष्ण भक्त कवि जगतनंद या जगनंद का नामोल्लेख तक नहीं है, इसका स्पष्ट कारण यह ज्ञात होता है कि उपर्युक्त एक कवित्त के अतिरिक्त कवि का शेष कृतित्व अद्यावधि अप्रकाशित और अनुपलब्ध है। अस्तु 'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित 'कवि जगनंद' और प्राचीन हस्तलिखित रूप में उपलब्ध कृति 'उपखाने सहित दशम स्कन्ध चरित्र' के रचयिता कवि जगतनंद के व्यक्तित्व और कृतित्व का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

व्यक्तित्व—'उपखाने सहित दशमस्कन्ध चरित्र' के रचयिता कवि जगतनंद या जक्तनंद और 'शिवसिंह सरोज' में संकलित कवि जगनंद एक ही हैं, क्योंकि

१—इन नामों के आदि पद 'जग', 'जगत' और 'जक्त' तीनों समानार्थी हैं और तीनों के साथ 'नंद' पद जोड़ने पर समानार्थी नाम बनते हैं।

२—सूर, तुलसी आदि हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने अपने काव्यों में छंद-सुविधा की दृष्टि से अपने नामों के समानार्थी विभिन्न नामों का प्रयोग स्वच्छन्दता से किया है। इसी परम्परा में कवि जगतनंद द्वारा जक्तनंद और जननंद नामों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

३—'सरोज' से उद्धृत कवित्त के "कहै जगनंद, काहे होति मतिमंद" चरण पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि अनुप्रासिक वृत्ति के निर्वाह के लिए 'मतिमंद' के वजन के अनुसार जगतनंद के स्थान पर 'जगनंद' रखना अधिक युक्ति-युक्त है। कवि के मात्र इसी छंद के आधार पर श्री शिवसिंह सेंगर ने 'जगनंद कवि' का परिचय दिया है, जबकि कवि का वास्तविक नाम जगतनंद ही प्रतीत होता है,

जिसका उसने उपखाने सहित 'दसम स्कन्ध चरित्र' में दो-तीन बार प्रयोग किया है।

४—'सरोज' में उल्लिखित जगनंद 'गोवर्धननाथ रूप माधुरी' पान करने का अनुरोध करते हैं और 'उपखाने सहित दशम स्कन्ध चरित्र' के रचयिता जगतनंद भी "श्री गोवर्धन ईश गुरून के चरन" मनाकर 'कृष्ण-चरित्र' रचना आरम्भ करते हैं। इस प्रकार दोनों स्रोतों से उपलब्ध काव्य पुष्टिमार्गीय वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रमुख उपास्य देव "श्री गोवर्धन नाथ जी" की भक्ति-परम्परा का काव्य सिद्ध होता है।

५—'उपखाने सहित दसम स्कन्ध चरित्र' के रचयिता कवि ने पुष्टि-मार्गीय कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के द्वितीय-पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ (सं० १५७२ से १६३८ वि०)[४] उनके द्वारा स्थापित ठाकुर श्री गोबर्द्धन नाथ जी और परवर्ती आचार्य गोस्वामी गोकुलनाथ जी[५] (सं० १६०८ से १६६७ वि०)[६] का स्मरण करके कृति का आरम्भ किया है और सम्पूर्ण कृति में इस सम्प्रदाय की आगे की लम्बी आचार्य-परम्परा के अन्य किसी आचार्य का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है, अतः कृति का रचना-काल आचार्य पद पर श्री गोकुलनाथ के प्रतिष्ठित रहने की समयावधि सं० १६३८ से सं० १६६७ वि० के मध्य सिद्ध है, अन्यथा कवि ने कृति के मंगला-चरण में इस सम्प्रदाय की आचार्य गोकुलनाथ जी से परवर्ती-आचार्यों की परम्परा का भी क्रमिक उल्लेख अवश्य किया होता। इसकी पुष्टि 'शिवसिंह सरोज' द्वारा भी होती है, जिसमें कवि जगनंद का समय सं० १६५८ वि० दिया गया है।

निवास—'शिवसिंह सरोज' में कवि को 'वृन्दावन वासी' बताया गया है, पर लगता है कि 'सरोजकार' ने अपनी ही सूचना पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया है। उक्त ग्रन्थ में उल्लिखित छंद के अंतिम चरण का—"छांड़ि सब फंद वृजभूमि को सटकिजा।" वाली अंश स्पष्ट कह रहा है कि कवि ब्रजभूमि की परिधि के बाहर स्थित किसी स्थान पर 'ममता' और 'फंद' में पड़ा हुआ था, अतः उसका 'वृन्दावनवासी' होना सम्भव प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वृन्दावन तो ब्रजभूमि का केन्द्र ही रहा है। फिर यदि यह मान लिया जाय कि कवि ने यह रचना 'वृन्दावनवासी' होने पर की है, तो कवि के इष्टदेव श्री गोवर्धन नाथ जी का मंदिर आलोच्य समय में श्री गोवर्धन-पर्वत पर था और परवर्ती काल में श्रीनाथ द्वारा (राज०) स्थानान्तरित हो गया था, वृन्दावन किसी काल में न था। अस्तु कवि जगनंद का मूल निवास स्थान एक अनुसंधान का प्रश्न है और इस सम्बन्ध में 'सरोजकार' का कथन विश्वसनीय नहीं है।

प्राप्त ग्रंथ की विशेषताएं—जगतनंद कृत 'उपखाने सहित दसम स्कन्ध चरित्र' एक चमत्कारपूर्ण प्रबन्ध-काव्य है। इसमें कुल सौ छंदों में श्रीमद्भागवत दशम-स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्ण के जन्म से 'निजधाम' प्रयाण तक का इतिवृत्त क्रमिक रूप में वर्णित है। प्रत्येक छंद में एक नई कहावत या मुहावरे का सटीक प्रयोग भी किया गया है। छन्द क्रमांक ४, १०, १२, २१, २६, ३८, ४२, ४४, ५१, ५६, ५७, ६३, ६७, ७४ एवं ७६ में चौपाई चौबोला आदि छंदों का प्रयोग है, शेष सभी सुन्दर कुण्डलिया छंद हैं। प्रतिलिपिकर्ता के प्रमाद से कृति का ५२वां छंद और एक-दो छंदों की कुछ पंक्तियां छूट गई हैं। हो सकता है, आधार प्रति के जीर्ण-शीर्ण होने के कारण इस त्रुटि के मूल में प्रतिलिपिकार की विवशता ही रही हो। यह कृति पुष्टि-मार्ग की संस्कृत और हिन्दी की कुछ अन्य कृतियों के साथ एक ही जिल्द में संग्रहीत रूप में उपलब्ध है।

हिन्दी में कहावतों और मुहावरों के सटीक प्रयोग के साथ भक्ति-नीति और वैराग्य के उपदेशात्मक 'सूक्ति-काव्य' रचने की परम्परा का श्रीगणेश स्वामी अग्रदास (लगभग सं० १६२० वि०) द्वारा किया गया ज्ञात होता है, परवर्ती काल में गिरधर कविराय, दीनदयाल गिरि, नरसिंघ, जुगलेश आदि इस परंपरा के विशिष्ट कवि हुए हैं। दतिया के कवि जुगलेश (र० का० सं० १९१५ वि० के आस-पास) ने तो इस परम्परा में हास्य-व्यंग्य का सुन्दर समावेश भी किया है, किन्तु कुण्डलिया छंद में मुहावरों और कहावतों के सटीक प्रयोग के साथ-साथ प्रबन्ध-सौष्ठव का समुचित निर्वाह करके प्रबन्ध-काव्य की जिस विलक्षण-परम्परा का आरम्भ इस कृति के रचयिता कवि जगतनंद ने किया है, उसका हिन्दी की परवर्ती-प्रबन्ध-काव्य परम्परा में जोड़ दृष्टिगत नहीं है। इस आधार पर शैली की नवीनता की दृष्टि से आलोच्य कृति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

कृति में प्रयुक्त कुछ सुंदर कहावतें और मुहावरे इस प्रकार हैं —

—'सौ बातन की बात' (छं० १)

—'मागे भैंस रुकाबनो करे पड़ा को मोल' (छं० ३)

—'कूकर चौक बिठाइये चाकी चाटन जाइ' (छं० १०)

—'सूनो घर भड़िहा को राज' (छं० १२)

—'नाचन निकसीं तो भलें घूंघट काहे देत' (छं० १५)

—'नदी किनारे रूखरा जब तक होइ विनास' (छंद० १६)

—'महिते दुके पियार में को कहि बैरी होइ' (छं० २८)

—'खायें पियें बधावनों सिर चुपरें त्योहारि' (छं० ३०)

—'लरका रोवै मांड़ कौ मांगै पितर सराध' (छं० ३१)
—'जाके सिर पर ओड़ है, सोऊ करै निवाह' (छं० ३४)
—'दुधार गाय की लातें भली' (छं० ३८)
—'नाऊ बार कितेक है आगे परिहैं आइ' (छं० ३९)
—'आवत कौं सिरआ कहैं जाते कौं कहैं मुक्तु' (छं० ४०)
—'तोहि बिरानी का परी तू अपनी निखेरि' (छं० ५१)
—जैसें कंता घर रहे तैसें रहे विदेस' (छं० ५९)
—'लागें गोतीती रहें, नातर तुक्का जनि' (छं० ६१)
—जे हरिहाई जो चरे, ते क्यों चरें पयार' (छं० ६५)
—'किस बिढ़ते पर तत्ता पानी' (छं० ६७)[७]
—'पानी में कौ बास करि मंगर ही सौ बैर' (छं० ६९)
—'नांचै कूदै बांदरा टूक जोगना खाइ' (छं० ७०)
—'आंधो वांटे जेवरी पाछे बछरा खाइ' (छं० ९३)
—'करै करावै आपुही सिर औरन के देइ' (छं० ९४)
—'जो दिन जाइ आनंद में जीवन को फल सोई' (छं० ९५)
—'कहूं-कहूं गोपाल की गई सइल्यो नाहिं' (छं० ९७)

कवि ने श्री कृष्ण-चरित्र के कथा-क्रम में उपर्युक्त मुहावरों और कहावतों का चयन इस समझदारी से किया है कि कहीं भी उनका प्रयोग खींच-तान कर किया गया दिखाई नहीं देता है। यह प्रबन्ध-कौशल और वाग्वैदग्ध्य निम्न-लिखित उदाहरणों से स्पष्ट है :—

'कोऊ रूख जहाँ नहीं तहाँ अरेडे रूख।
तहाँ अरेडे रूख, कूख यादव की प्रगट्यौ॥
कंसराइ सुख पाइ, विषै रस में अति लिपट्यौ॥
अहंकार तन गर्व, सर्व पर्वत ज्यों साजें।
.................नहि हरि जब लौं राजें॥
राजें हरि जब लों नहीं, मान देवकी कूख।
कोऊ रूख जहाँ नहीं, तहाँ अरेडे रूख॥४३॥"

मथुराधिपति कंस के अहंकार पर चोट करने के लिए उपयुक्त कहावत का चयन और निर्वाह, मधुरा अनुप्रासिक वृत्ति, प्रवाहमयी भाषा और शान्तरस के प्रयोग की दृष्टियों से उक्त छंद कवि के श्रेष्ठ कवि कर्म का परिचायक है।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण के उत्तोत्तर उत्कर्ष के चरम बिन्दु पर, योद्धा-साथियों से विरहित होने पर भी दम्भ त्याग सकने में असमर्थ कंस की स्थिति को

स्पष्ट करने के लिए "डेढ़ बकाइन देखिये, मीयां बैठे-बाग' कहावत के सुन्दर प्रयोग द्वारा इस प्रकार अभिव्यंजित किया गया है :—

"मीयां बैठे नाग, नाग काली जब नाथ्यो।
अघ, बक, केसी, ब्योम, रजक, धरिपट क्यो हांथ्यो,
तब बोलत है कंस, अरे ह्यां कोऊ हेरो।
राम-कृष्ण कौ पकरि, नंदादिक सबको घेरो॥
घेरो आपुहि काल कौ, रह्यो अकेलो काग
डेढ़ बकाइन देखिये, मीयां बैठे बाग॥५४॥"

भक्त सुदामा की दारिद्रय-दुखिता पत्नी को "संपत होइ तु घर रहो, नातर भलो विदेस' कहावत का आश्रय लेने के अतिरिक्त और कोई चारा दिखाई नहीं दिया—

"नातर भलो विदेस, कहत नागर नित पति सों।
सुनो सुदामा कंत, संत सुखदायक अति सों॥
खैबे को नहिं अन्न, वस्त्र पहिरन को नाहीं।
बालक सब बिललात, नाथ तुम जाहु उहांहीं॥
जाहु उहांहीं चित्त करि निरखो कृष्ण सुरेश।
संपत होइ तु घर रहो, नातर रहो विदेस॥८६॥"

कुन्ती-कृष्ण संवाद में पुष्टिमार्गीय भक्ति के "द्वैताद्वैतवाद" को "भात लपेट्यो साग है, साग लपेट्यो भात" मुहावरे द्वारा बड़ी सरलता से प्रकट कर दिया गया है—

"साग लपेट्यो भात, मात कुंती यह पूँछो।
अहो कृष्ण समुझाइ कहो अपनी नीकी गति॥
कौन तात को भात रूप तुव कैसो है हो।
कहत कृष्ण समुझाइ, कहा तुम यामें लैहो॥
लैहो तुम यामें कहा, यों ही बीतत जाव।
भात लपेटो साग है, साग लपेटो भात॥९३॥"

इसी प्रकार इस लघु प्रबन्ध कृति के प्रायः प्रत्येक पद्य में भिन्न-भिन मुहावरे या कहावत का आश्रय लेकर बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रबन्ध-सौष्ठव और काव्य सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाई देता है। अतः इसे एक चमत्कारपूर्ण प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है।

भाषा—कृति की भाषा बुंदेली है, जिसे ब्रज का संस्कार देने का असफल प्रयास किया गया है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि कवि जगतनंद बुन्देली-बोली-क्षेत्र के ही मूल निवासी थे और उनका मूल निवास-स्थान उनकी

इस एकमात्र उपलब्ध कृति का प्राप्ति-स्थल दतिया नगर अथवा उसके निकट का अन्य कोई स्थान भी हो सकता है, किन्तु ठोस प्रमाणों के अभाव में किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचना संभव नहीं है। अनुप्रासिक वृत्तियों, रूपक आदि अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से भाषा अलंकृत है। छंद-सौष्ठव, अलंकृत भाषा और रसों के प्रयोग के द्वारा कृति का कलापक्ष समृद्ध है।

विक्रम की सत्रहवीं शती के मध्य-काल में उत्पन्न भक्त-कवि जगतनन्द की काव्यरीति के समस्त गुणों से अलंकृत यह कृति भावी-युग को काव्य-प्रवृत्तियों पर अपना स्पष्ट प्रभाव निरूपित करती है। इस प्रकार यह कृति उन महत्व-पूर्ण कृतियों के साथ अध्ययन किये जाने योग्य है, जिनमें भक्ति और रीति युग के संधिकाल की काव्य प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। इसीलिए अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय के सुप्रतिष्ठित कवियों के साथ इस कृति के रचयिता कवि जगतनन्द का नाम भी स्मरण रखे जाने योग्य है।

———

१. 'उपखाने सहित दसम स्कन्ध चरित्र' (हस्तलिखित प्रति) प्राप्ति स्थल—श्री गिरिराज शरण शुक्ल, एडवोकेट, कुञ्जनपुरा, दतिया (म० प्र०)
२. शिवसिंह सरोज : जीवनचरित्र (भाग)—श्री शिवसिंह सेंगर, कथा, उन्नाव (३४) सं० १९३४, पृ० ४९।
३. वही, पृ० १००।
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—लेखक डा० दीनदयालु गुप्त, सं० २००४, पृ० ७५
५. वही, पृ० ५२७
६. वही, पृ० ७५
७. इसी मुहावरे की ध्रुव पंक्ति का (दतिया) नरेश महाराजा पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' (सं० १७३२–१८१७ वि०) का एक लम्बा दार्शनिक विचारों से संयुक्त गीत उनकी अप्रकाशित कृत "रसनिधि-सागर' में विद्यमान है। जिससे स्पष्ट है कि यह मुहावरा उस युग में दतिया राज्य की बोली में व्यवहृत था।

कृत्तिकायें : आकाश की मामुलिया

आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

[खुसफुस····एक गहरा रहस्य····सर्वद्रष्टा वैदिक ऋषियों से लेकर आज के महान वैज्ञानिकों तक के लिए। लेकिन बुंदेली गोरीधना की उससे बातचीत—'किरकि चियाऊँ बैरिन भई मोरे बालमा।' आकाश की मामुलिया की एक अन-कही कथा, ललित निबंध की पाटी पर दुर्गाचरण शुक्ल की अनुभवी कलम से।]

'मामुलिया' क्वाँर के महीने में हम सजाते हैं, तो कातिक की मामुलिया आकाश सजाता है। आप साँझ को गगन पर दृष्टि डालें, तो मोतियों और हीरों से जगमग करते चौक पर चौक पूरे आपकी दृष्टि को अपनी ओर खींच लेंगे। ठीक पूरब में झिलमिल करती 'किचपिचियाँ' जिनसे बुन्देली माटी की खास पहचान है, कुछ-कुछ ऐसी लगेगीं जैसे वे किसी अनकही बात को आपके कान में खुसफुस कर रही हैं।

सदियाँ बीत गईं इन्हें इसी प्रकार खुसफुस करते, किसी गहरे रहस्य की बात को उजागर करते, पर वह रहस्य आज तक रहस्य ही बना है। रहस्य वह सृष्टि के आदिकाल में रहा होगा, रहस्य वह सर्वद्रष्टा वैदिक ऋषियों के लिए था, और रहस्य वह आज के महान वैज्ञानिकों के लिए भी है। अनकही बात अनकही ही रह गई है।

बात अगर ऐसी ही होती, तो फिर बात यहाँ न उठती। इस धरती के बेटे और बेटियों ने इन 'किचपिचियों' से पहचान की है, उन्होंने इन आकाशीय ज्योतिपुंजों को अपने परिवार को दुःख-सुःखों को भागीदार बनाया है। जो बुन्देली गोरीधना (गौरवर्णा लक्ष्मीस्वरूप रमणी) इन किचपिचियों को आक्रोश में कभी कहती थीं—'········ 'किरकिचियाऊँ बैरिन भई मोरे बालमा।' 'वही आज गाँव के एकमात्र पंडित 'उपाध्यामाराज' से बड़ी श्रद्धा से पूछ रही हैं

कि—इस 'कातिकी-पूनो' को 'किरकिनियाँ' (कृत्तिकायें) कितने समय से आ रही है ? उसने कातिक-स्नान किया है, अपने पति के मंगल के लिए, परिवार के सुख के लिए, अपने सौभाग्य के लिए,''''इसलिए कृत्तिकाओं में वह जल ग्रहण नहीं करेगी, उनकी आकाशीय आकृति को 'पुओं' में बनाकर 'उपाध्यामाराज' की सेवा में अर्पित करेगी और कथा सुनेगी कातिकी-पूनो की। अपने पोपले मुख से निकलने वाली अस्पष्ट वाणी को जोर से बोलकर स्पष्ट करने का विफल प्रयास करते हुए वह 'उपाध्यामाराज' अपनी संस्कृति की पिटारी ही उस नई बहू को कथा के बहाने सौंप रहे हैं और बार-बार आगाह कर रहे हैं—'बहू, मेंदारानी ने कैई कातक अस्नान करते। प्रयागराज में महीनन रईं तीं। बड़े-बड़े पंडितन में उनै पुरान सुने उर गुने। ऐसी हतीं तुमाईं सास। उनको कैबो हतो—कातिक की ऐसी कथा हमने नईं सुनी कऊँ, मराज, जैसी अपुन ने हमें इतै गाँव में सुनाई।' और फिर इस बात की चिन्ता किये बगैर कि बहू अभी सुनना चाहती है कि नहीं, बोलना चालू कर दिया—'पूरा राम कृतोद्वाह शितिकण्ठो महातपाः''''।' श्लोक और अर्थ कहने में कुछ पंडित के मुख पर ऐसी कान्ति थी जो किसी सफल व्यक्ति की प्रसन्न मुखमुद्रा में ही देखी जा सकती है। कथा में उन्होंने सुनाया कि—कैसे तारकासुर ने देवों को परास्त किया ? वे प्रजापति ब्रह्मा के पास अपना दुखड़ा निवेदन करने गये। प्रजापति ने उन्हें बताया कि शिव का कुमार ही देवताओं का योग्य सेनापति हो सकता है और वही तारक को पराजित कर सकता है। देवताओं ने प्रयास किया। शिव और पार्वती का विवाह हुआ। देवताओं ने शिव के समीप अग्नि को शुक के रूप में भेजा। शिव ने अपना तेज अग्नि को दिया। अग्नि धारण न कर सकी, उसने शिव के तेज को गंगा में फेंक दिया। वह भ्रूण बना और तरंगें जलने लगीं। गंगा ने उस भ्रूण को शरवण (रामशिर के बन) में फेंक दिया। वहीं बालक का जन्म हुआ, तेज इतना प्रखर था कि कोई देवता या मानव उनके समीप जा नहीं सकते थे। तब ब्रह्मा ने इनकी सेवा-सुश्रुषा के लिए कृत्तिकाओं की सृष्टि की—अम्बा, दुला, नितत्नी, अभ्रयन्ती, वर्षयन्ती और चुपुणीका इनके नाम थे। इन्हीं के दूसरे नाम हैं—संभूति, अनुसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति तथा अम्बा। ये ही स्वामी कीर्तिकेय की छः धाइयां हैं, जो आकाश में आज भी दिखती हैं।' पंडित जी ने यह भी बता दिया कि ये मातृकायें स्वभाव में सौम्य हैं, मंगलकारी हैं, धन, समृद्धि और सुख के लिए इनकी पूजा करनी चाहिए। तुम्हारी सास प्रत्येक कातिक में इनकी पूजा करती थी।

मैं खड़ा था पर पंडितजी का ध्यान उस ग्राम्यवधू पर था, जो मंदिर में 'किचपिचयाऊँ पूनों' कितने समय लग रही है, यह पूजने आई थी। वे उसे पूरी

कथा सुना चुके थे और अब वधू अपने आँचल के पल्लू से मंदिर के चौखट के चरण छूकर जा रही थी (पंडित जी भी देव-प्रतिमा की भाँति चौखट के उस पार थे, अस्पृश्य और अतिपूज्य होने से पहुँच के बाहर)। मेरा मोह भंग हो रहा था, मैंने पंडित जी को देखा—उपाध्याय जी, नमस्कार। नमस्कार, पंडित जी ने सूखा उत्तर दिया। वे कड़क कर बोले—'मास्टर साहब, आपने उर्दू पढ़ी है, तो बताइये—'कृत्तिकाओं को क्या कहेंगे ?' मैंने उर्दू तो पढ़ी थी, परन्तु कृत्तिकाओं को क्या कहते हैं, यह शायद हमारे उस्ताद को भी मालूम नहीं था। मैंने कहा—उपाध्याय जी, पढ़ी अवश्य है, पर मेरी उर्दू आज की और आपकी उस जमाने की। दोनों का क्या मुकाबला ?

प्रसन्न होकर पंडित जी कहने लगे—'सच कहते हो, वह जमाना क्या था ' हाँ इन कृत्तिकाओं को अरबी में 'अलयूरिया' अनेक तारों वाला (गुच्छा) या 'अलनज्म' (उत्तम काव्य) कहा गया है और प्रकाशमान तारों को 'अलिसयोन' अर्थात् अम्बा। बेटा, यह उत्तम काव्य है–'पश्य देवस्य इमं काव्यं न मामार।' अब पंडित जी खुल रहे थे। उनकी आँखों में फिर एक बार वैसी ही चमक बिखर चली थी—'बेटा, तुम्हें एक बात इस उपाध्याय की जीवन भर याद रखना है।' और वे चुप हो गये। मेरी ओर शान्त दृष्टि से देखने लगे। मैंने कहा—'आप मेरे लिए गुरु तुल्य हैं, आज्ञा करिये।' उपाध्याय जी ने धीरे स्वर से आरम्भ किया—'बेटे, तुम प्रतिदिन प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में नक्षत्र-दर्शन अवश्य किया करो। गायत्री जपते हो तो, उसी समय जपो। अग्नि-होम करते हो, तो उसी समय करो। कृत्तिकेष्टि जानते हो ?' प्रज्ञानाय नक्षत्र दर्शनम्। ज्ञान चाहो, तो नक्षत्र दर्शन करो। प्रज्ञा चाहो, तो नक्षत्र-दर्शन करो। मैं आज्ञाकारी की भाँति विनत खड़ा था और पंडित की गंगा बह रही थी—ये कृत्तिकायें इनके दर्शन में १०-११ मास होते हैं। इनके दर्शन से आयु बढ़ती है। 'नक्षत्राणाम् एषाम् उपस्थे सोम आहतः' वेद में लिखा है—नक्षत्रों में सोम हैं, सोम अमृत तत्व है। उस सोम का दृष्टि से पान करो। श्रुति चाहती है 'अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः' 'सहवं कृत्तिकाः' तुम जानते हो कि हम ब्राह्मण हैं ? उपाध्याय जी कड़क कर बोले। मैं सिटपिटा गया, जाने क्या कह डालें वे ? मैंने हाथ जोड़े और वे उच्च स्वर में बोले—'वेद अग्नि को प्रमुख देव मानता है और कृत्तिकाओं को अग्नि नक्षत्र। कृत्तिकानक्षत्रमग्निर्देवता '''अतः कृत्तिकायें ही प्रथम उपास्य नक्षत्र है। वे रक्षक हैं, जानते हो, वेदों में नक्षत्रारम्भ कृत्तिकाओं से है। 'मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया, मानो सचमुच ही मैं वह सब कुछ जानता हूँ, और पंडित जी मन्त्र-पाठ करने लगे, 'एकं द्वि त्रीणि चत्वारिति वा अन्यानि नक्षत्राणि''''अथैता एवं भूयिष्ठा यत् कृत्तिकाः''''एता हवै

प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते····, अन्य नक्षत्र एक, दो, तीन या चार पर ये कृत्तिकायें बहुत सी हैं····। ये पूर्व दिशा में विचलित नहीं होतीं····। तभी अकस्मात् उपाध्याय जी को पूजा का ध्यान आ गया। वे रुद्र सूक्त बोलते हुए शिव पर अभिषेक करने लगे और मैं नमस्कार कर वहाँ से चल दिया।

विचार चल रहा था कि काल अखण्ड है इसकी प्रतीति हमें नहीं है, पर इस गाँव के बूढ़े पुजारी को है, जो कह रहा है कि--'कृत्तिकायें पूर्व में उगती हैं।' उसे मास के नाम का कारण-सम्बन्धी नक्षत्र में चन्द्र की स्थिति-ज्ञात है। उसे नक्षत्रेष्टि की ३००० वर्ष पुरानी प्रक्रिया में विश्वास है। एक हम हैं, जो अपने झूठे ज्ञान में ऐंठे बैठे हैं। मुझे बार-बार उपाध्याय जी की बहू से हुई बात याद आ रही है, देवगढ़ का शिलालेख मेरी आँखों के सामने उभर चला।··· ५४२ ई० सन स्वामि महासेन 'मातृगण ध्यानभिषेक्त है, स्कन्दगुप्त इन्हीं कृत्तिकाओं के ध्यान में डूबा है, इनका ध्यान ऐश्वर्य के लिए किया जा रहा है (मातृणां लोकमातृमण्डलं भूतयेऽस्तुवः) इसी शृंखला में अब मेरी आँखों के सामने हरिवर्मा का साँगलोर का ताम्रपट्ट भी उभर आता है और देवगढ़ का वह शिलालेख चित्रपट की भाँति ओझल हो जाता है। फिर उपाध्याय जी का परिचित स्वर ··। सामने आकाश में पूर्व की ओर से निकलता हुआ कृत्तिकाओं का गुच्छा दिखता है। विशेषतः 'अम्बा' दमक रही है।

सूर्यास्त पश्चात ही पूर्व में कृत्तिकाओं के दर्शन होते हैं और समस्त रात्रि यह ज्योतिपुंज आकाश में रहता है, उस दिन मानव, जो मानता है कि भूमि उसकी माँ है और आकाश उसका पिता, वह चुप नहीं रह सकता। आकाश ज्योति का पर्व मनाये तो माँ भूमि क्यों न मंगल आरती उतारे। वह शत-शत दीपों की मालाओं से धरती के कण-कण को प्रकाशित कर देता है--आकाश के साथ भूमि भी दीपावली का ज्योतिर्पर्व कृत्तिकाओं के सम्मान में मनाती है। पर आज तो कृत्तिकाओं के साथ पूर्ण चन्द्र विराजमान हैं। शरत्-पूर्णिमा के शापमुक्त यक्ष, अपनी अलका में किसी की वेणी मुक्त कर रहा है, रागोन्मुख या रसोन्मुख नदी-पुलिन पर प्रत्येक मानव-मन का कन्हैया वेणु के स्वरों-स्वरों को निनादित कर रहा है, पर ऐसे में बेचारा मैं उपाध्याय जी के झकझोरों में विचलित हो कृत्तिकाओं के विचारों में लीन हूँ। क्या हैं ये कृत्तिकायें? एटलस देवता की सुन्दर पुत्रियाँ (प्लीएड्स) जिन पर महाव्याध आराइन ने नियत बिगाड़ी और उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ा। बेचारी रातों काँपती देवों के देव ज्यूपिटर के पास पहुँचती। दुर्धर्ष व्याध से बचाने में पहले तो उन्होंने आगा-पीछा किया और अन्त में एक युक्ति से काम लिया। एटलस की पुत्रियों को फाख्ता बना कर आकाश में पहुँचा दिया। व्याध भी वहाँ

जा पहुँचा, परन्तु तब तक ये प्लीडीज उसकी पकड़ से दूर पहुँच चुकी थीं। पर यह तो केवल एक ग्रीक कहानी है, तथ्य नहीं।

तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक, खगोलशास्त्री कहते हैं कि कृत्तिकायें अनेक तारों का ऐसा समूह है, जिसके समस्त तारे समान गति से (लगभग समान गति से) तथा समानान्तर दिशाओं में घूमते हैं, इसलिए वे अनन्त सागर के विभिन्न गाड़ियों के समान एक समूह बनाये हुए हैं।

कृत्तिकाओं के तारे पृथ्वी से दूर हैं, कृत्तिकाओं से चलनेवाली प्रकाश की किरणें तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की अपनी गति से पृथ्वी तक पहुँचने में पाँच सौ वर्ष लेती हैं। हम कह सकते हैं कि कृत्तिकायें पृथ्वी से ५०० प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। यह है इनकी दूरी। तारों की संख्या भी एक पहेली है। आँख से सामान्य दृष्टि वाले को ६ तारे दिखाते हैं, परन्तु जिनकी दृष्टि तेज होती है वे सात भी देख लेते हैं। बच्चों को और भी अधिक १०-१२। संसार में दृष्टि तीव्रता के रिकार्ड के रूप में संख्या १९ (उन्नीस) तक पहुँची है। आप भी अपनी नजर को आजमाइये। देखें कितने तारे आप देख पाते हैं? पर यह केवल नंगी आँख की बात है। दूरबीन की सहायता से अभी तक ५०० तारे देखे गये हैं।

कृत्तिका के गुच्छ का आयाम यह तारक गुच्छ यथार्थ में इतना बड़ा है कि इसके व्यास के रूप में आर-पार प्रकाश की किरण को जाने में ५० वर्ष लग जाना सामान्य बात है। इन तारों के बीच में शून्य नहीं है। आधुनिक खोजों ने स्पष्ट कर दिया है कि तारों के बीच में द्रव्य है, जिसे 'अन्तर्तारिकीय द्रव्य' कहते हैं। इसमें हाईड्रोजन काफी मात्रा में रहता है। यही वह द्रव्य है जिससे विश्वों का सृजन होता है। कृत्तिकाओं में भी नीहारिका का होना नये विश्व-सृजन का संकेत है। यह संकेत दीप्ति परिवर्तन के बीच देखा जा सकता है।

कृत्तिकाओं की इन सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विशिष्टियों को जानकर जब हम इन्हें देखते हैं, तो फिर वे और भी रोचक हो जाती हैं। वे ऐसे ज्योतिपुंज के रूप में दिखने लगती हैं, जिसमें नये विश्व का सृजन हो रहा है क्षण-क्षण परिवर्तित दीप्ति की प्रकाश लहरें अनन्त में फैल रही हैं और जो भी हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं वह सब ५०० वर्ष पूर्व का अतीत मात्र है।

यह कृत्तिकाओं का तारक गुच्छ, जो अत्यन्त सुन्दर है, इसकी लोकप्रियता का कारण है इसका इसी प्रकार के अन्य तारक गुच्छों से निकटतर होना।

अपने देश में कृत्तिकाओं का वर्षारम्भ से बहुत पुराना सम्बन्ध है। 'वृहत्संहिता' नामक ज्योतिष ग्रन्थ के टीकाकार वर्ष का आरम्भ जिस मास

६

मे पूर्ण-चन्द्र की स्थिति कृत्तिकाओं में हो उस मास से मानते हैं। सूर्य सिद्धांतकार ब्रह्मगुप्त भी यही मानते हैं। अलबेरूनी के अनुसार उस समय भारत में कृत्तिका से युक्त पूर्णिमा को (उसके दूसरे दिन से) प्रारम्भ होने वाले मास को ही प्रथम मास माना जाता है। गीता भी इसी की महाभारत कालीन स्वीकृति—'मासानाम् मार्गशीर्षोऽहम्' के द्वारा सूचित करती है। प्रसिद्ध ज्योतिषी 'बायो' ने गणनायें करके प्रमाणित किया है कि चीन में ई० पू० २३५७ के आस-पास नक्षत्र गणना कृत्तिकाओं से प्रारम्भ होती थी। वैदिक नक्षत्र गणना तो कृत्तिकाओं से होती ही थी। इस प्रकार नक्षत्र गणना में कृत्तिकायें सुदूर भूत में प्रथम रही हैं।

कृत्तिकायें वर्ष भर में १०-११ मास दिखाई देती हैं। उनका उदय जब पूर्व में होता है, उस समय उदयकाल में, पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर वे पूर्व में ही दिखाई देती हैं। इसीलिए वे नाविकों के लिए (सेलिंग स्टार्स) हैं। वे नाविक ग्रीक हों या फोनीशियन, चीनी या भारतीय वे सब की पथ प्रदर्शक हैं। वे महाभारत काल में श्री कृष्ण के लिए अपनी विभूति थीं और आज वैज्ञानिक चन्द्रशेखर के लिए रहस्यों का स्रोत हैं। जिन कृत्तिकाओं को हजरत मुहम्मद साहब कुरआन शरीफ की ५३वीं और ८६वीं सूरा में याद फरमाते हैं, अलघूरिया, अलनज्म कहकर और जिन्हें बुन्देलखण्ड के निवासियों ने सौम्य लोक माताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया था। वे कृत्तिकायें आज अनन्त से संकेत भेज रही हैं—'हे भूमिपुत्रो, गरदन सीधी करके हमारी ओर देखो। देखो यह हमारा हृदय, ब्राह्मण्ड के अनेक रहस्यों को सतत उद्घाटित कर रहा है। अपेक्षा है केवल दृष्टि और मुक्त प्रज्ञा की। आज वह भी हम तुम्हें दे रहे हैं—तुम्हें तो केवल हमारी ओर देखना भर है।'

क्या हम उक्त दिव्य 'मामुलिया' को देखने के कुछ क्षण दे सकेंगे ?

———

उगती कोंपल
शीशे और पत्थर का संबंध

—कु० प्रतिभा गौतम

[उगती कोंपल बसंत आने पर चुपचाप अंकुआती है, पर वासंती बयार के झोंकों की मस्ती में कविता की कोकिल उसे अनदेखा कर देती है। मामुलिया तो अपनी प्रजातांत्रिकता में ठूठ तक को परखेगी, फिर उगती कोंपल को हर अंक में जरूर सँवारेगी। उनसे आग्रह है कि वे हर बार अंकुआकर मामुलिया से गले मिलें, ताकि उनकी वासन्ती संवेदना कुण्ठित न हो। —सम्पादक

जन्म: २५-५-१९६१। पंद्रह वर्ष की अवस्था से लिखना प्रारम्भ। बहुत कुछ अनकहा जब मन में ही रह जाता है, तब तक टीस-सी उठती है और कागज पर फिसल पड़ता है। सम्प्रति एम० ए० पूर्वार्द्ध की छात्रा।

तुमने फेंका है पत्थर
और तोड़ दिये हैं
कॉलेज की खिड़की के काँच
जिसके टुकड़े/मेरे सीने में चुभे हैं
और उसमें दिखाई दे रहा है
गुस्से से खूंखार तुम्हारा चेहरा।
तुम्हें पत्थर फेंकना/सिखाया किसने ?
संभवत: तुम्हारे माता-पिता ने तो/हर्गिज नहीं
और न ही अध्ययन के पाठ्यक्रम में
अध्याय है कोई पत्थर फेंकने का।
काश ये पत्थर/तुम किसी ऊँची मीनार पर फेंकते

जिसकी एक-एक दीवार गरीबी के खून से रंगी है।
काश ये पत्थर/तुम किसी कांच की बोतल पर फेंकते
जिसका हर अट्टहास/ स्वार्थ के पारे से लिपटा है
लेकिन तुमने तो फेंका है पत्थर
उस पवित्र विद्यामंदिर पर
जिसकी हर ईंट से/तुम्हारे विकास की कहानी बनी है।
पत्थर फेंकने के इस अनवरत क्रम में
एक दिन जब तुम्हें होश आयेगा
तब तुम देखोगे/कि तुमने
शीशे और पत्थर के संबंध को
ठीक से नहीं जोड़ा है
और तब तुम/कुछ भी न कर पाओगे।
अपने दिमाग के इस भद्दे मजाक पर
सिर्फ आंसू बहाकर ही रह जाओगे।

—

कहानी

मस्तानी

चौधरी किशोरी लाल

'इससे बड़ा और क्या अपमान हो सकता है मेरा। भरी सभा में सभासदों के सामने जो आपने मेरा तिरस्कार किया, क्या वह कम है राजपुरुष ? आपने अपना हार मेरी ओर फेंककर मेरे स्वाभिमान को जो चोट पहुंचाई है, उसे मैं जीवन भर नहीं भुला सकती।' मस्तानी की इतिहास प्रसिद्ध कथा, पर एक नये तेवर से मस्तानी की ठसकीली मानसिकता की पहिचान पहली बार देती हुई, चौधरी किशोरी लाल की आंख से।

तबले पर थाप पड़ते ही पैरों के घुंघरू झनझना उठे। देखते ही देखते वातावरण में सन्नाटा छा गया। जैसे-जैसे गीत के बोल बढ़ते, वैसे ही वैसे घुंघरूओं का थिरकना बढ़ जाता है। मस्तानी ने थोड़े ही पलों में दर्शकों को बांध लिया। गीत की हर पंक्ति के विराम पर, घुंघरुओं की ध्वनि मंद होती और लोगों के मुख से अनायास ही वाह–वाह का स्वर फूट पड़ता।

लोग मंत्र मुग्ध से मस्ताती को देख रहे थे। आज मस्तानी के अंगों में मानो बिजली दौड़ रही हो। एक पल में इधर तो दूसरे पल में उधर/ज्योंही तबले पर थाप पड़ती, मस्तानी के घुँघरू भी उसी अनुपात में थिरकते। न थाप रुकती और न मस्तानी की गति। आज साज, आवाज और घुंघरुओं में होड़ लगी थी। मस्तानी के अंग-प्रत्यंग से आभा फूट रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी श्वेत महुआ जैसी आंखें, नारियल जैसे कड़े उन्नत उरोज, गठीली मांस पेशियां, कमल मुख पर भौंरा जैसा तिल तथा केर के गाभे जैसा चिकना बदन, बरबस आदमी को अपनी ओर खींच लेते। नृत्य होता रहा…नृत्य होता रहा। साज बजता रहा ...बजता रहा। वीणा का हर तार घुंघरूओं का आघात पा

झंकृत हो उठता। मस्तानी के बदन पर मोती जैसे श्रम-कण झलक उठे, पर उसकी गति रुकी नहीं। बढ़ती ही गई···बढ़ती ही गई। तबले पर जैसे ही अन्तिम थाप पड़ी, मस्तानी के घुंघरूओं ने पूर्ण विराम लिया। चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट और वाह-वाह की ध्वनि मुखरित हो उठी। मस्तानी नत मस्तक हो महाराज को प्रणाम कर ही रही थी कि उसके चरणों पर बड़े-बड़े मोतियों का शुभ्र अमूल्य हार आ गिरा। पैरों की आभा का स्पर्श पा मोतियों की आभा द्विगणित हो गई। मस्तानी पर मानो बिजली गिर पड़ी। उसने धीरे-धीरे सिर उठाया। हार फेंकने वाले को लाल-लाल आंखों से देखा और बिना हार उठाये, बिना कुछ कहे, जल्दी-जल्दी पग भरती सभा-मंडप से निकल गई।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। बाजीराव पेशवा का अपमान ? इतने ही सोच से सबके मन दहल उठे। मस्तानी की मां के घबराहट का अन्त न रहा। सारे शरीर से पसीना छूट गया। आज उसकी नासमझ लाड़ली ने सर्वाधिक शक्तिमान महाराजधिराज बाजीराव पेशवा का अपमान कर डाला। इस दुस्साहसी कृत्य का परिणाम सोचते ही सोचते वह सिहर उठी। उसने साहस बटोर कर मुक्ता-माल को उठाया सिर से लगाया और नीची निगाहें कर कांपते पैरों से धीरे-धीरे पेशवा के समीप आई। उनका अभिवादन कर, अटक-अटक कर बोली—'श्रीमन्त धृष्टता को क्षमा करें। बालिका अभी अबोध है। उस नासमझ द्वारा श्रीमान् का अपमान हुआ। मुझे हार्दिक पश्चाताप है। उस दुस्साहसी की मां श्रीमन्त से दया की भीख मांगती है।' कहते-कहते उसका गला भर आया। आंखों से आंसू झरने लगे। पैर लड़खड़ा गये और पेशवा के पैरों पर गिर रोने लगी। बाजी राव पेशवा का मुख शान्त था। वे अपने ही विचारों में खोये हुये थे। किसी से बिना कुछ कहे ही वे सभा मंडप से उठ गये। मस्तानी की मां बुझी-बुझी आंखों से उनको जाते हुये देखते ही रह गई।

'मत्तो आज तूने क्या कर डाला। घर आये मेहमान का अपमान····। ओह नासमझ लड़की····तूने ये भी न सोचा कि किसके सामने ये कृत्य कर रही है। यह वही व्यक्ति है, जिसने आड़े समय में हम सबको सहारा दिया। बुन्देलों की लाज बचाई। भरी सभा में श्रीमन्त बाजीराव पेशवा का अपमान ····। सोचते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अनर्थ····महान अनर्थ····तूने मुझे कहीं का न रखा। अपने साथ मुझे भी ले डूबी। कलमुँही बोल, तुझे क्या सूझी····तूने ये कृत्य क्यों किया···क्यों किया ?' कहते कहते अपना सिर भूमि पर दे पटका।

'मां···मां····' कहते-कहते मत्तो मां के अंक से लिपट फूट-फूट कर रोने लगी। आंखों से जलधारा अविरल गति से बहती ही गई····बहती ही गई और तब तक न रुकी, जब तक उसने मां की हृदयाग्नि को शान्त न कर दिया। 'मां मैं लाचार हूं, क्या करूं ···?' वह सिसकते हुये बोली—'स्वाभिमान की आग इस हृदय में दावानल सी सदैव जलती रहती है। उन्होंने भरी सभा में मेरा जो अपमान किया, क्या वह कम है ? वे भूल गये कि मेरी नशों में छत्रपति महाराजा का खून बहता है····उन्होंने मेरे साथ निरी वेश्या-सा व्यवहार किया। मां मैं वेश्या नहीं हूं ·· नहीं हूं ···।' कहते-कहते फूट-फूट कर रोने लगी। बिटिया के गर्म आंसुओं ने मां के मोम से हृदय को पिघला कर तरल कर दिया। मां ने उसके सिर पर हाथ फेरा, उसे छाती से चिपकाते हुये बोली—'शान्त हो, मत्तो शान्त हो। जो हो गया, सो हो गया। कमान से चला हुआ तीर वापस नहीं लौटता। जो आगे आयेगा, उसे देखा जायेगा। मैं स्वामी के पास जाती हूं, देखो वे क्या कहते हैं। तू चिन्ता न कर। महाप्रभु प्राणनाथ जी रक्षा करेंगे।'

दीपक के मन्द प्रकाश में धरती पर लेटी-लेटी मस्तानी अपने मन ही मन बुदबुदा रही थी। क्रोध से उसका चेहरा अब भी तपे कुन्दन-सा दमक रहा था। रह-रह कर उसका मन कचोट उठता। आखिर उन्होंने मुझे समझा क्या है····वेश्या····केवल वेश्या····छी-छी····क्या मां का कर्म मेरे जीवन में अभिशाप बना रहेगा····क्या नारी के आदर्श को मैं कभी न पा सकूंगी····क्या मेरी मन की कली तिरस्कार की आग में झुलस जायेगी····सौभाग्य की रोली मेरे माथे पर कभी न शोभेगी····? हे ईश्वर ये कैसी विडम्बना····क्या मेरा अंक सदैव कीच से सना रहेगा ? मेरा भाग्य क्या मुझे डुबो कर ही छोड़ेगा ? विधि का ये कैसा चक्र····राज पुरुष की सन्तान और वेश्या····नहीं––नहीं, मैं कदापि वेश्या नहीं हूं···जीवनपर्यन्त इसके लिये संघर्ष करूंगी····अपने जीवन को होम दूंगी····अपने आंचल से इस दाग को मिटाकर ही दम लूंगी। मां से लाख प्रतिरोध किया, लेकिन वे न मानी····न मानी और उनकी हठ के कारण ही मुझे आज यह दिन देखना पड़ा। मैं गृह त्याग दूंगी, राज्य त्याग दूंगी···क्या इतने बड़े आसमान के नीचे मुझे दो मुट्ठी अन्न न मिलेगा··· दो गज जमीन पैर फैलाने को न मिलेगी और यदि न भी मिलेगी, तो मां बेतवा की गोद तो मुझसे कोई छीन ही नहीं सकता····उसी में जा चिर शान्ति लूंगी। इस दुनिया में मेरे लिये बचा ही क्या है ? किसके लिये नारकीय जीवन भोगूं····नहीं-नहीं, अब न रहूंगी····अब न रहूंगी। यह विचार आते ही वह उठी। द्वार की ओर बढ़ी। द्वार खुला था। दो पग आगे चली ही थी कि उसे किसी की छाया

दिखाई पड़ी । मन का कल्पना-सेतु टूटा । आँख उठाई और देखते ही सहम गई । पीछे को हटी और दरवाजा बन्द करना चाहा, पर आगन्तुक का पैर भीतर हो चुका था ।

मस्तानी की क्रोधाग्नि भभक उठी । अनायास ही उसके बोल निकल पड़े— "क्या अभी कुछ और शेष बचा है, जो यहाँ देने आये हो । तुमने जीवन में अनचाहा सभी कुछ तो दे डाला है । निकल जाओ····निकल जाओ यहाँ से··।' कहते-कहते उसकी वाणी शिथिल हो गई, पैर कांपने लगे और आँखों से आँसू बह निकले ।

"भद्रे····मैं तुमसे दो शब्द कहने आया हूँ । मुझे अवकाश दो । मैंने ऐसा कौन सा जघन्य अपराध किया है, जो मुझे ऐसा कठोर दण्ड दे रही हो ।" बाजीराव ने संयत स्वर में कहा ।

'अपराध····' मस्तानी बड़बड़ाई····'सभ्य जनों से अपराध होता ही कब है ····उनके लिये तो यह सहज क्रीड़ा मात्र है ··किसी का अपमान उनकी दृष्टि में नगण्य है ।

"मैंने आपका अपमान किया है ? मुझे बताओ तो सही ।" आगन्तुक ने पूछा ।

'अपमान····' मस्तानी तिलमिला उठी । 'इससे बड़ा और क्या अपमान हो सकता है मेरा । भरी सभा में सभासदों के समाने जो आपने मेरा तिरस्कार किया, क्या वह कम है राजपुरुष ? आपने अपना हार मेरी ओर फेंक कर मेरे स्वाभिमान को जो चोट पहुँचाई है, उसे मैं जीवन भर नहीं भुला सकती' । पुरुषों का न्याय····आह क्या न्याय है····किसी की कोख से जन्म लेना क्या मानव का धर्म बन जाता है····क्या राजपुरुष का रक्त इतना दुर्बल होता है कि वेश्या की कोख में जा, अपना अस्तित्व ही मिटा लेता है । मैं आपसे ही पूछती हूं, श्रीमन्त बतलायें, क्या मेरे अंगों से वेश्यापन की बू आ रही है ··क्या आपको मेरा अंग-प्रत्यंग वेश्या लगता है····जिससे आपने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, कहते-कहते उसकी उत्तेजना इतनी बढ़ गई कि उसके बोल आगे न निकल सके ।

"भद्रे । मैंने तुम्हारा किंचित मात्र भी अपमान नहीं किया" बाजी राव ने संयत स्वर में कहा । तुम मुझे समझने में भूल कर रही हो । मेरे हृदय में जितनी अगाध श्रद्धा तुम्हारे प्रति है, उतनी और किसी के लिये नहीं । तुम्हारी पहली ही छवि ने मेरे मन को मोह लिया । तुम ही मेरी सर्वस्व हो ··मेरी आराध्य हो । यदि मन के मोती अपनी आराध्या के चरणों में न चढ़ाता, तो और कहाँ चढ़ाता । तुम तो मेरे नयनों की ज्योति हो ज्योति के बिना ये अन्धा

जीवन कैसे सुख पायेगा ? प्रिये, मेरी श्रद्धा को यदि तुम अपमान समझती हो, तो अपराधी तुम्हारे चरणों में नत मस्तक खड़ा है । जो दण्ड चाहो, दो । मुझे स्वीकार है' कहते ही पेशवा ने सिर झुका लिया ।

बाजीराव के बचन सुनते ही मस्तानी हतप्रभ हो गई । वह अपने को संभाल न सकी । वह उनके चरणों में गिरकर बोली—'श्रीमन्त, मुझे क्षमा करें । दासी ने अज्ञानता में आपसे कटु बचन बोले । अपने दुर्व्यवहार पर मुझे पश्चाताप है । मैंने आपको समझने में भूल की ।'

बाजीराव ने उसे उठाकर अंक में भरते हुये कहा—'भूल मानव स्वाभव है । भूल मेरी ही थी । मुझे उठकर ही हार तुम्हारे श्री चरणों में अर्पित करना चाहिये था, फेंककर नहीं । मस्तानी मुझे क्षमा कर दो ।'

"मुझे अधिक लज्जित न करिये, महाराज" मस्तानी उनके अंक में सिमिटती हुई बोली—'दासी से ऐसी बातें कहते आपको शोभा नहीं देती ।'

'दासी····दासी····दासी····' बाजीराव कुढ़ते हुए बोले—'प्रेम में न कोई दासी होती है और न कोई स्वामी । मस्तानी दासी कह कर क्यों मुझे अपमानित कर रही हो ?'

"स्वामी, आप क्या कह रहे हैं ।" अनजाने ही ये शब्द मस्तानी के मुख से फूट पड़े 'अरे मैंने क्या कह दिया ?' सोचते ही वह लज्जा से लाल हो गई । बाजीराव के अंक से छूटकर टुकुर-टुकुर जमीन को देखने लगी ।

"अब क्या सोचने लगीं, प्रिये" बाजीराव ने कहा—'अपने मन की बात तो तुमने बतला दी । अपने प्रीतम से अब निष्ठुरता कैसी ।'

'महाराज'····मस्तानी धीरे-धीरे-धीरे बोली—'आप मुझे किस रूप में स्वीकार कर रहे हैं ? रखैल या परिणीता ? युग-युग से यह मानव जाति हम वेश्या पुत्रियों को केवल मन-बहलाव का साधन मात्र समझती है । जब चाहा, आँखों पर बैठाया और जब चाहा, मुरझाई कली की भाँति मसलकर फेंक दिया, मेरा स्वप्न क्या महाराज साकार करेंगे ? परिणीता के रूप में यह दासी आपके चरण कमलों की रज अपनी माँग में भरने की अभिलाषी है । क्या महाराज दासी पर अनुग्रह करेंगे ?'

"प्रिये, बाजीराव ने अपनी आराध्य को न कभी वेश्या समझा है और न आगे समझेगा ।' पेशवा ने कहा—'जो मेरी आराध्या है, वही मेरी सर्वस्व है । तुम्हारे लिये मुझे राज्य भी त्यागना पड़े, तो त्याग दूंगा, लेकिन अपनी आराध्य की कोख को कभी लांछित न होने दूगा ।" कहते उसने मस्तानी के गले मंगल सूत्र पहिना दिया, माँग में सेंदुर भर दिया और उसके हाथ

लेकर सहलाने लगा। मस्तानी ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। कुछ क्षण ऐसे ही व्यतीत हो गये। मस्तानी भविष्य के स्वप्नों में खो गई।

'प्रिये, क्या अभी न बोलोगी?' बाजीराव ने मस्तानी को अंक में भरते हुए कहा। मस्तानी ने आंख उठाई। आंखों से ही आंखों को उत्तर देकर उनके गले से लता बन झूम गई। बाजीराव ने भी दो स्मृति चुम्बन उसके कपोलों पर अंकित कर दिये।

•

लघुकथा

आपके लिए नहीं....

'उधार मत मांगिए, वह भीख से भी गया बीता है।' दूकान पर लगे बोर्ड को पढ़कर मेरा हाथ जेब में ही रह गया था, पुरानी उधारी के परचे में अटक कर। चतुर दूकानदार ने शायद मेरी स्थिति भांप ली थी। उसने लायची का डिब्बा बढ़ाकर बोर्ड की तरफ इशारा करते हुए कहा था—'साब, यह आपके लिए थोड़े ही है। वो तो अभी एक और साहब आए थे पावभर शक्कर चाहिए और वह भी उधार।' मैं सामान लेकर थोड़ा आगे बढ़ा ही था कि दूकानदार की आवाज मेरे कान भेद गयी थी। वह दूसरे ग्राहक से कह रहा था—'अरे साहब, ये आपके लिए थोड़े ही है। ये तो आपके पहले एक साहब खड़े थे....' और मैं तुरंत आगे बढ़ आया था। जानता था, कल फिर इसी दूकान पर आना पड़ेगा।

—अमिताभ गुप्त

मिलो तौ तनकई देरखों हतो तौऊ भौत नौनों लगो तो

वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

[आपकी चिठिया औ लेख लौटबे पै मिलो। आपने इत्ती अच्छी शैली में जौ लेख लिखो है कै जान परत है जैसें संजय धृतराष्ट्र सें कथा के रये हैं....डा० रामकुमार वर्मा की बुन्देली की बानगी के साथ वीरेन्द्र शर्मा कौशिक का एक अनूठा संस्मरण]

ऊ दिना ३ जून १९६३ की भोर हती। घेरे बैठो अखबार पढ़ रओ तो। तबई बायरे सें 'शर्मा जी, शर्मा जी' की बोली सुनाई दई। उठकें उन सज्जन सें मिलो, तौ बताओ उनने—"आज कुण्डेश्वर में डा० राम कुमार वर्मा कौ आवौ शाम कें पाँच बजे के करीबन हो रओ है, सो प्राचार्श्री प्रेम नारायण जी रूसिया ने अपुन खों साढ़े चार बजे पोंचबे के लानें फरमाओ है।" मोरे कानन में जैसई जा बात परी तो मोय भौतई नौनी लगो और मैं खुशी के मारे फूल कें कुप्पई तो हो गओ। मोय लगो के डा० रामकुमार वर्मा जैसी महान विभूति सें मिलबो कोई साधारण सी बात तौ आय नोंई, सो तुरतई मैंने उनें अपनी स्वीकृति दै दई—"मैं जरूरइं समय पै पोंच जैओं। रूसिया जी सें आपुन कै दइयो जाकें।"

जब संझा बिरियां कुण्डेश्वर पोंचो, तौ रूसिया जी कैऊ जनन के संगै बैठे डाक्टर साहब के आबे की बाट जोय रये ते। हमऊं उन सब जनन में जा बैठे। सब जनें बैठे-बैठे बातें करई रए ते कै डा० साहब की कार आऊत दिखानी। हम सब जनै उठ बैठे। कार रुकी तौ वर्मा जी कार तें निकरतई बोले—"रूसिया जी, क्षमा कीजिएगा विलम्ब के लिए।" कितनी विनम्रता और उदारता भरी ती उनके इन शब्दन में कै कछु कात नइं बनत।

कुण्डेश्वर की कुण्ड कोठी पै सें जमड़ार नदी को दृश्यावलोकन करत ई करत डा० साहब उषाधार के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा का जिक्र करत बोले—'बाणपुर के राजा बाणासुर की पुत्री को नाम हतो उषा, जो भौतई रूपवान और अनुपम सौंदर्यधारी हती। उऐ पावे के लानें राजा अनिरुद्ध ने बाणासुर सें युद्ध करो। ई युद्ध में बाणासुर हार गओ और ऊषा अनिरुद्ध परिणय-सूत्र में बाँध दये गये। ऐसो सोऊ कओ जात कै ऊषा कुण्डेश्वर में शिव-स्तवन के लानें रोज आउत ती और वे जी घाट पै स्नान करत तीं ओइयै आज हम सब उषाधार के नाम सें जानत।'

कुंडेश्वर की शासकीय बुनियादी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्था का तो कोना-कोना घूम डाला डाक्टर साहब ने और संस्था की नाना गतिविधियों से भौतई प्रभावित भये। बोले वे—'इतै तो शांतिनिकेतन की सी झलक मिल रई। मोय तों जो लगत कै इतई आ बसौ। एई प्रकृति-सौंदर्य देखकें स्यात् चौबे जी (पं० बनारसी दास जी चतुर्वेदी) आय गए ते इतै और बिलात दिनन बने रये। संस्था के बारे में तो मोय जो कै आऊत कै ई देश में उत्तम शिक्षा दैबे के लानें कुण्डेश्वर जैसे ९ लाख विद्यालयों की जरूरत है पर समस्या तो नौ लाख रूसिया जैसे प्राचार्य पावे की है। कहाँ मिलेंगे वे ?

कुंडेश्वर के बगीचे में एक छायादार पेड़ के नैचें वैठ कें वे बताउन लगे—"इन दिनों हमारे छात्र-समुदाय में अपनी संस्कृति और भाषा के प्रति नैकऊ मोह-ममता नईं रै गई। जब भी अपने विद्यार्थियों से मैं पूँछता हूँ—क्यों भाई ! तुमने सुकवि ईसुरी की फागें पढ़ीं ? अपने कवियों तुलसीदास, केशवदास, घासीराम व्यास आदि की रचनायें पढ़ीं ? और तो और रामचरित मानस, भगवत गीता आदि जैसे लोकप्रिय ग्रंथों के पठन-पाठन सें भी जे लोग दूर रात। यहाँ तक कि एम० ए० (हिन्दी साहित्य) के छात्र भी इन महाग्रंथों के प्रति उदासीन हैं। मोय तो भोतई पीड़ा होत इनमें ऐसे नकारात्मक उत्तर पाकें। पर करों का ? कछु समझ नईं परत।

डाक्टर साब की जा बात तो भोतई नोनी लगी मोय—"जब भी मैं रचना करने बैठता हूँ, तो स्नान करके ही बैठता हूँ। सरस्वती के मंदिर में अशुद्ध वस्त्रों में जाना मुझे बिलकुल ही पसंद नहीं।" किस राम भक्त को यह जान कें खुशी न हुइये कै डा० साब सदैव स्नान करके नियमित रामायण-पाठ करत। कछू व्यक्तियों की संकोची मनोवृत्ति की चर्चा करत-करत वे कै उठे कै उन्हें कछू ऐसे लोगन सें मिलवे को मौका भी मिलो है जो हमारी प्राचीन साहित्यिक सांस्कृतिक निधि रवों ऐसें दबाये बैठे हैं जैसे धन पर कुन्डी मारें साँप।

बुन्देलखन्ड की लोकभाषा बुन्देली से उन्हें भौतऊ लगाव और प्रेम है,

जी को एक ज्वलंत उदाहरण बुन्देली में लिखो उनको जो पत्र नीचें दओ जात—

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
१८-७-६३

प्रिय वीरेन्द्र कुमार जी,

आपकी चिठिया और लेख लौटबे पै मिलो। आपने इत्ती अच्छी शैली में जो लेख लिखो है कै जान परत है जैसें संजय धृतराष्ट्र सें कथा कै रये हैं। आपने इत्तो लौक सवाल पूंछे हैं कि उनको जुआब दैबे में हमें सोई एक लेख लिखनै पर है, मनो संक्षेप में लिखें देत—

१. श्री छत्रसाल के वंश में हम भये हते जौन बड़े अच्छे साहित्यकार और वैद हते।

२. साहित्य रचना सन् १९२२ सें भई जब हमने 'सुखद सम्मेलन' नाम की कहानी लिखी थी। बा बखत हम १७ बरस के हते।

३. ओरछा को देव पुरस्कार १९३६ में चित्ररेखा पै मिलो।

४. वीर हम्मीर पै पैलो पारिश्रमिक ३० रु० सन् १९२३ में मिलो।

५. हमारी साहित्य साधना पै तुलसी, कबीर, कालिदास, आस्कर वाइल्ड और इब्सन को शैली को प्रभाव बहुत पड़ो।

६. लिखबे को बखत दस बजे रात के बाद या ५ बजे सुबह के बाद अच्छो बनत है।

७. कुल ५२ रचनायें करीं। कविता में एकलव्य और नाटक में चारमित्रा नोनो लगत है।

८. रूस में दो बरस रहो—बहुत लिखो। कबीर पै बहुतब नुसंधान करो—औ का का लिखें। कुशल छेम की चिठिया डारबू करे।

अपनोई
रामकुमार वर्मा

डा० वर्मा के ई पत्र और पूर्व वर्णित उनके कथनों से साफ-साफ जाहिर हो जात कै उन्हें अपनी ई बुन्देल-भूमि सें कितनो स्नेह है और काए न होवे—एई बीर, प्रसू भूमि नैई तो जन्म दओ तो उन्हें सागर (म० प्र०) के गोपालगंज मुहल्ला में १५ नवम्बर १९०५ कों। ऊ दिनां कुन्डेश्वर की ऊ भेंट में वे अपनी मातृभाषा-बुन्देली में ही बड़ी देर तक बातें करत रये। आज जब हमें ऊ दिना की याद आऊत, तो सोच कें रै जात कै एक हम हैं जो अपनी बोली खों कितनी उपेक्षा की नजर सें देखत। प्रायः हर बुन्देलखन्डी बुन्देली में बोलबो

गँवारपन समझत। जोऊ कारन है कै ई बोली में गद्य साहित्य तो बिलकुलई नइयाँ जबकि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, मुंशी अजमेरी जी, वृन्दावन लाल वर्मा, ब्रजवासी पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और वृन्दावनदास जी इसे अन्य अनेक बोलियों और भाषाओं से भी अधिक सरल और मधुर मानत है। पं० बनारसी दास चतुर्वेदी और कृष्णनंद गुप्त तो इतै तक दावा करत कै ब्रजभाषा सहित कँऊ भाषायें तो सरलता और मधुरता में बुन्देली को पानो तक भरें तो भी कोनऊ आश्चर्य नोई। अपने एई बुन्देली प्रेम के कारण डाक्टर साब ने प्रयाग विश्वविद्यालय में अनुसंधान एवं शोध कार्य हेतु अलग से एक बुन्देली विभाग ही खुलवा दओ तो।

हमाई बा भेंट आजऊँ हमाये हृदय-पटल पै ज्यों की त्यों अंकित बनी है। अब तो ऊकी याद भर शेष रै गई और बो सारे जीवन बनी रानै।

———

अनूदित

महाकवि कालिदास : वीरेन्द्र शर्मा

[अनुवाद की दिशा में पहल करता है यह अनूदित अंश। बुन्देली पद्य या गद्य में अनुवाद प्रत्येक अंक के लिए आमंत्रित है।]

द्रुमः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं, स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ॥
—ऋतु संहार

देखौ प्यारी लद गये रूख सब फूलन सें,
आउतन सुराज रितुराज श्रीमंत के।
खिल गये कमल अमल जल पुखरन,
तिरियाँ दिवानी भईं पुलकन कंत के।
गंधन बहार भरी डोलत बयार तन,
मन कों सुहात सज्जा सुख सरसंत के
नौने से लखात दिन हिय खों लुभात रात,
जिय हुलसात रात दिनन बसंत के ॥

पयोधरैर्भीमगभीर निस्वनैस्तडिद्भिरु द्वेजितचेतसो भृशम्।
कृतापराधानपि योषितः प्रियान्परिष्वजन्ते शयने निरन्तरम् ॥
—ऋतुसंहार

तरतर तरकत बदरा तरक तर,
कर कर करकत बिजुरी भयावनी।
चौंक चौंक जगीं धक धोंक उठो हिय हाय,
सुमुखि सयानीं लगैं मनक लुभावनी।
थर थर कंपत करेजो तिन कामिनि को,
देख देख डरपत कारी सी घटा घनी।
बिबस बिचारीं हारीं लिपट झपट झट,
भूल जातीं प्रीतम की सबरी कहासुनी ॥

———

तुम

गुणसागर 'सत्यार्थी'

तुम फिर ममुलिया सी आईं,
फूलन सजी सजाईं।
अंग अंग सब खिले फूल से;
रस-रँग रँगी रँगाईं;
मुसक्यातन बेला सी कलियाँ,
अब साँ सँ रूँ बगराईं।
कमल कली से अधर सुहाने,
सबकी खुसबू ल्याईं;
डग डग काँटिन के झकरा पै,
'गुनसागर' खों भाईं।

जब तुम लहरन पै लहरानी,
प्रत छन नई दिखानी।
नील बरन जे निरमल लहरें,
देख तुमें इठलानी;
एँनाँ-सी इन लहरन पै तुम,
दिखतन तुरत हिरानी।
तुम हो इन में, कै जे तुममें?
जोई भई हैरानी;
पै तुम माया 'गुनसागर' की
साँ सँ ऊँ बड़ी सेयानीं।

मामुलिया

डा० के० एल० वर्मा 'विन्दु'

"एक चना दो देवलीं, मोओ साउन आओ"।

बुन्देली लोक-गीत को जो टूंका अपने में इतै की संसकिरिती खों समेटें। ई सें लरका उर बिटिया इतै दोऊ रुपइया की दो बगलन घाईं दो ठो हो कैं एकई होत अैं। जई सें इतै बिटियन खों बड़े-बूढ़े लों पांव छूकैं इज्जत करत। काय कैं बिना बिटिया के जनमें इतै उद्धार लुक नईं होत। जेई बिटियाँ क्वाँरे में कन्या कुआउतीं उर देवी-द्योतन घाईं इनै इतै जिमाओ-खुआओ जात उर हरदो-चाँउरन सें टीक-टाँक कैं पूजो जात। जेई क्वाँरीं कन्याँ इतै मामुलिया को खेल खेलतीं। क्वाँर के मइना में बेरी के काँटेदार झकरा में लाल, पीरे, लीले, सेत फूलन खों काँटन में खोंस खाँस कैं तनक नैचें खों लाल रंग को पटका पैरा-पैरू कैं, मामुलिया सजा-सजू कैं बिटियाँ ऊकी पूजा-रचा कर-करू कैं ऊ सजी बजी डार खों तला-तलइयन में सिरावे के लानै हंसत-खेलत, गाउतीं-बजाउतीं लै जातीं—

लियाओ चम्पा चमेली के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया
लै आओ घिआ तुरइया के फूल, सजाओ मोरी मामुलिया।
जाँ जाँ आजुल जू के बाग, ताँ ताँ मोरी मामुलिया
आजी जुआ देखन गईं बाग, सजाओ मोरी मामुलिया।
मामुलिया के आये लिवउआ, झुमक चली मोरी मामुलिया॥[१]

"बीन बीन फुलवा लगाई बड़ी रास, उड़ गये फ़ुलवा रै गई बास"[२] साँसऊँ में जो लोकगीत को टुकड़ा अपने में अनेकन भाउन खों प्याज की परतन घाईं परत पै परत चढ़ाये, गठे-गठाये रूप में दिखातअै काय कैं फूल खिलत उर धूरा

१. श्रीमती कला वर्मा से प्राप्त, निवाड़ी (टीकम गढ़) म० प्र०
२. वही

में मिलमिलू जात पै उनकी बास तो फैलतई रत उर खूबई बसात। ऐसोई हाल नोने नोने नामी-गरामी मान्सन को होत। बे तो आउत जात रात पै उनके करमन खों आईनार लो, पीढ़ी दर पीढ़ी लो याद करतई रत। जेई भाउन खों, जो मामुलिया को अनुस्ठान अपने में समेटें धरें। श्री कृष्णानन्द जू ने जेई बात खों ऐसें सोऊ कओ कै,'' "जो कुंआरी लड़कियों के किसी प्राचीन अनुष्ठान का अवशेष जान पड़ता है। इसे मामुलिया कहते हैं।[1]

सांसऊँ में मामुलिया में काँटन उर फूलन को मिलो मिलाओ रूप रातअें। काँटे दुख उर फूल सुख ये पिरतीक से लगत अें ओ सुख उर दुख दोई मिलमिलू कें जिन्दगी कुआउत अें। सो कैबे को मतलब जो आय कै मान्सन खों बिटियां जो उपदेस देतीं, दिखाउतीं कै जीबे की लल-कीली ललक लालसा पिरानन सें प्यारी होत अे। नदी की जल भरी धार सी होत अे उर सुख-दुख ऊके दो ठो किनारन घाईं आयें। ईसें ईखों जिन्दगी खों—हंसत, खिलखिलात, चुलबुलात बउत रयें चाइये। जेई गत-मत जिन्द-गानी आय कुआउत अे उर ई को रुकबो मौत। मौत में मुसकाबो सिकाबै, सिसकाबे सें छुटकारो गुआबै जो मामुलिया को अनुस्टान। इतै बुन्देलखण्ड में बिटियां गली गली गैलन में गाउतीं-सुनाउतीं चली जातीं अें। मामुलिया के सिराबे को अरथ जो आय कै दुख-काँटे, सुख-फूला, झाड़ी-जिन्दगानी एक दिना संसार रूपी तला में सबई सिरा-सिरू जै—हिरा-हिरू जै। तो नर काय खों परेसान होत ई संसार के भरम जाल में, जो जिन्दगानी छिन भर को पानू कैसो बल बूल को खेल आय। ई सें ई मामुलिया सी जिन्दगीं खों चम्पा, चमेली, तुरइया रूपी खुसियन के फूलन सें सजा-सजू लेंयँ नइं तो हौंतई मलत रै जै। कित्तो बड़ो भारी उपदेस समेटें जो कन्यन को बुन्देली अनुस्ठान परक खेल ।

मामुलिया सिरा-सिरू कें बिटियाँ इतै जो गीत गाउतीं, हंसत, खेलत अपनी सैज की मस्ती में मुस्कराउत चलीं आउतीं—

चन्दा के आस पास गोउँअन की रास,
बिटियां खेलें सब सब रात।
चन्दा राम राम लेव सूरज राम राम लेव, हम घरै चले।
चन्दा के आस पास मुतियन की रास,
बिटियां खेलें सब सब रात।
चन्दा राम राम लेव सूरज राम राम लेव, हम घरै चले।[2]

१. श्री कृष्णानन्द जी गुप्त—"हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास' १६ वाँ भाग

२. डा० वृन्दावन लाल वर्मा—बुन्देल खण्ड के लोक गीत, पृष्ठ—६

ई गीत में ऐसो लगत कै चन्दा उर सूरज परम पुरुस के पिरतीक होबें उर उनकें करकें नायं मायं गोंउंअन की रासन सी आतमन की भोतईं भीर भार भरी होवै। तबईं सबरीं बिटियां कती जातीं कै "मोई राम राम लेव, मोई राम राम लेव," काय कें सब अन्त में जितै से आउत उनईं जाकें ठौर पाउत अें।

सांसऊँ में मामुलिया आतमा की पिरतीक बनी दिखात अे। ई की दसा बिलकुल कन्यन घाईं रात, काय कें कन्या रूप सोऊ आतमन घईं पुनीत पावन होत अे। कैबे को मतलब जो आय कै मामुलिया अनुस्टान कन्यन सें जुर-जुर कें बिटियन ओ आतमन की बिवसता दरसावे में खूबई सच्छम होत अे। "मामुलिया के आये लुबउआ, झमक चली मामुलिया" लोक गीत की दोई कड़ियां इन भाउन को सलीता सो भरो दिखात अे। काय कें बुन्देली कन्या होय चाय आत्मा जे मामूली से बुलउआ पै मामुलिया सी सुख-दुख को तानो-बानो बुने, आसा-निरासा के दौल में डूबतीं उतरातीं चलिअईं तो जातीं, बिसू-रत, बिबसता के अँसुआ टपकाउत ...। ई के लानें एक विद्वान ने कओ कै, "मामुलिया को त्योहार....इस जनपद को जीवन-निर्वाह की सतत प्रेरणा देता है।"[1]

मामुलिया के लानें दूसरी बात जा सोऊ कई जात अे कै इन बिटियन के त्योहार सें बेर की मैहमा को सोऊ पतो चलत अ। काय कें बेर इतै के मानसन कों जिअन-जोइया रओ। मउअन ने उनै हिस्टपुष्ट करो तो बेरन नें उनै जीबे लाक बनाओ, जेई सें इत कओ जातअे—

मउआ मेवा बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।
जे सब चीजें चानै होवै, डांवौं करो सगाई॥

कैबे को मतलब जो आय कै मउआ इतै मेवन घाईं रओ तो गुलगुच इतै की सबसें गुरीली, रसीली फलन की मिठाई कुआउत रई। बेर के बिरचुन को कलेवा सुआस्त के लानै सबई तत्वन सें भरो पूरो रओ ओ। बेरी के पेड़े डांग में भोतई होत अें जेई बेर जीवन कों सुखी करबे अमरत बिरछा को काम करत अें ओई खें इतै मामुलिमा में पूजो जात अे। बिद्वानन में कओ सोऊ अे कै, "बेर से साधारण जनजीवन का निर्वाह आसानी से चल जाता है क्योंकि उसके कई पदार्थ बन जाते हें। सूखे बेर को कूट कर बिरचुन (आटा) बनाया जाता है, जो जल में घोलकर खाया जाता है। यह शीतल और पित्त वर्द्धक होता है। सूखे

१. श्री राम चरण हयारण 'मित्र'—बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, पृष्ठ—३१६

बेर पानी में उबालकर खाये जाते हैं जो ग्रीष्म ऋतु में बड़े स्वास्थ्य वर्द्धक होते हैं। इसके अतिरिक्त झरिया के कच्चे बेर को औषधिरूप में देने से कुकर खाँसी को बड़ा लाभ होता है।''[1]

जई भाउन की काय इती गाई जात अै—

''ओ मोई कच्ची बेरी के बेर,

पाकन न पाये कच्चे टोर लये।''

सोसऊँ में जे सबई बातें सोंचो आयें जेई सें इतै की जनी मान्सें लोकगीतन में बेरन की मेहमा गाउती रती अैं—

ननदी हौं बेर बिनाओ सें गुटउआ

काँटौ लगै मुसकाओ मोरे लाल।

बखरी में नौनी कुइया खुदाओ।

पानू भरन जिन जैओ मोरे लाल।

दोरें मैं होवै बेरी को बिरछा

मीठे बैर हँस खैओ मोरे लाल।

इतै के बादबासिअन खों बेर पिरान पालक उर नौने मीठे फल रये अैं जेई सें 'सबरी माई' ने राम जू के सुआगत में चीख चीख कैं मीठे-मीठे फलन में बेरई धरे ते, काय कै इतै जेई काजू किसमिस उर बादमन की झक भारत अैं।

बिटिया उर बेरी जियन-जोइया के लाने दो होकैं एकई सौ अरथ देत अैं। बेरी में फूल, फल उर काँटे होत अैं। बिटिया में सोऊ फूलन जैसी कोमलता, परवार बनाबे की छमता उर फलन धाईं नौनी-नौनीं सन्तानन खों पैदा करबे की गरमा होत अैं। औ बड़ी भाई बात तौ जा होत अै कै इतै कीं आज कीं बिटियाँ काल की दुलइयाँ बन-बनूं कैं, नये घर खों, बर खों हर तराँ सैं सजाउतीं, बनाउतीं उर सुख कौ रंग रस बरसाउतीं। बुन्देलखंड की बिटियाँ काँटन भरी जिन्दगी में मुस्कानन के फूला खिलाउतीं, एक नईं दो-दो कुलन कौ नांव चलाउतीं जेई सें इतै एक कानात कई जात अै—

''कुल कुल बाती, चना चबाती।''

---

१. श्री राम चरण हयारण 'मित्र'—बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य पृष्ठ ३१५

गाँव की छटा • रति भानु तिवारी 'कंज'

गाँव हमारे सुरगलोक से ओजू लागी मानों।
बिरछन तरें हरी काँदी पै परतन लगै सुहानों॥
झुका मुके में चलै बैर बिजना सौ आन डुलावै।
ओस इतै सबरे खेतन में मोतीं से बगरावै॥
सगुन चिरइया डारन में नित गाय मधुर तरनाती।
ऊषा उठकें बड़े भोर, सूरज खों देवै पाती।
उजयारो सो होवै जब जब रमुआँ जबै हारै।
देख उरैंया रूपा भौजी अपनो काम सँवारै॥
बिन्नू के संग चकिया ओरै बन्न-बन्न को गावै।
फरे उसार बगर की उठतन, गइयाँ ढीलन जावै॥
ढीली गइयाँ कड़ीं बायरें कड़तन भओ उजयारो।
ऐसें लगतइ आसमानसें उतर परो ध्रुवतारो॥
लटें दिखें करिया केसन कीं मौं के ऊपर फैलीं।
मानों चंदा के संग कर रये, कैउ नाग अठखेली॥
उसनीदे से सोसें मन में हो गइ अब लोलइया।
ईसें फैल गई चंदा की नोनी सेत जुनइया॥
अरुनाई लख कएँ कोउ सूरज को भओ पसारो।
ई सें धरती के आँचर में दुरन लगो अँदयारो॥
जे सुभाव के भोरे भारे आड़ पेंच न जानें।
हिलमिल काम करें खेतन में उतइ मड़इया तानें॥
बिरचुन मठा लटा को रोजऊँ उठतन करें कलेवा।
बेर मकोरा और मकुइयाँ गुलगुच मउवा सेवा॥
सांझ भोर कोड़न औ खेतन लोक गीत नित गावें।
सैरो और दिवारी सुनबे इनके मन ललचावें॥
अदवइयाँ पंचा पैरेजे लगें देखतन नौने।
जैसे विध ने रूप ढार दओ गोरे बरन सलोने॥
कँउकाँ झिन्ना झिरे दिखावे कँउकाँ नदिया-नारे।
आबे जाबे खों पगडंडी चौरे हैं गलयारे॥
प्यारी छटा 'कंज' गाँउन की जियै देख सब हरसें।
इतै बास करबे सुरपति जू सुरग लोक में तरसें॥

———

होरी कौ रंग

मालती घोष

सिवरात्रि कौ दिन। लुगाइं भुन्सारे से संकर जू ढारबे जान लगींतीं। सपर कें हमइं नै गड़ई भरी और मड़िया में पौंचे। पूजकें बायरें आये, तौ देखो कै आठ-दस जनीं पार्वती जू को मड़िया के ऐंगर ठाड़ीं कछू बातें कर रईंतीं। मन भओ कै हमइं सुन लइये, जे औरें काय बतातीं।

उनन में सें एक कैरई ती—'ऊकौ अबैलों पतो नई परो, साल भर होन चाउत।' दूसरी नै कई—'ऊके घर के ऐंगरई एक ऊके नाते की भौजाई रात। आदमी कात, उयै सब पतो है, पै बा कोऊकौं बताउत नइयां।' तीसरी नै मौं बिचका कें कओ—'अरे ऊयै तौ बड़ो घमंड है, ऊके तौ मिजाजई नइं मिलत।' उनइं में सें कोनऊ कान लगी—'जौ सब ठीकई है, ऊकी लुगाई पै का बीत रई हुहै।'

अब उतै ठांड़ो होबौ करौं लगो, माथे कौ पसीना पोंछत भई मैं घर कों चल दई।

आतरे रोज सुननै परतीं ऐई बातें, पै आज कछू जादा आंस गई। मुहल्ला की तौ ठीकई है, अब तौ सहर भर में बात फैल गई। कभऊँ त भूलबे वालीं बातें फिर मन में उमड़ान लगीं। होली कौ ऊ दिन बीरु पैली बेर आओ तो होली खेलबे। आतई बोलो तो—"भौजी हम होरी खेलबे आये तुमाये संगे।"

"हम तौ होरी कभऊँ कोऊ से खेलतई नइयां।"

"खेलत तौ हमऊँ नइयां। बताओ कबै देखो, पै आज तौ खेलनै।" ऊकी बातन में अपनोपन और चैहरा पै हठीलोपन झलक रओतो। एक हांत में रंग भरी गड़ई और दूसरे में कछू कागज की पुड़िया लैंय तो। होरी के नांउ पै माथे पै एक गुलाल को टीका भर दिखात हतो।

"रंग का है?" पूंछत में मोय कछू हंसी-सी आगई।

'जो है।' हांत की गड़ई की कोद ऊनै इसारो करो।

'जो रंग डारहो?'

'मतलब? जैसें बो समझबे की कोसिस कर रओ होय।

'अरे रंगई डारने है, तौ मैनत के पइसन कौ

—ल्याव।' मोरे मौं सें जैसें रटो रटाओ गौ

—निकर गओतो।

'ऐं···हुओ तौ' जैसें ऊकों एक धक्का सौ लगो होय। कछू देर ठांड़ो रओ, फिर गड़ई धरकें मोरे पांव छुये और लौट गओ। ऊ दिना सें ऊकौ आज लौ कछू पतो नइयां।

जानै कासें कै आई ऊ दिना ऊसें बा बात और ऊनै का समझ लई। बैसें बीरू सच्चे दिल कौ और अच्छी चाल चलन कौ लड़का हतो, पै कछू दिनन सें पइसा के पाछें ऐसौ दीवानौ हो गओतो कै उयै पइसइ-पइसा दिखात तो। पइसा के लानें कैसउ मुसीबत मुड़याबे खां राजी हो जात तो। ऐसई एक झंझट में परकें उयैं जेल देखनै परी।

"भौजी जेल तौ हो आये पै मन ऊसई है।'

जेल से छूटें के बाद बीरू कओ करत तो।

"समय आबे पै सब बदल जाता।' मोय कै आओ।

"अब ईसें बड़ो और कौन सौ समओ आहै।"

'जे कैबे की बातें नइं होतीं। आदमी खां तौ तनक-सी बात लग जाय, तौ न जानै काकौ का बन जाय।' सुनकें बीरू खां हँसी आ गई ती।

ऊ दुपारी में जायँ जब आ जात तो औ घन्टन बैठो बतात रतातो। एक दिना कान लगो—'भौजी, अबतौ मन नई लगत। इतै रहत हैं, सो झंझटें मुड़याउनें परतीं औ बायरें कऊं जाबे कौ मन नइं होत।'

'ईसें अच्छो तो तुम कऊं बायरइं रानलगौ तौ जौ सब छूट जाय।' समझाबे के काजे हमनै कई।

'भौजी, जी दिना तुम नौकरी करन लगहो, सो हम तुमाये संगे चलबी। उतई तुमाये लड़का-बच्चा—खिलाबी औ रोटी खैबी, सो सब काम अपने आपइं छूट जैहे।" बीरू की बातन में सहजता हती।—मोय हंसी आ गई।

● ●

'जिज्जी, किवाड़ खोलियो'

'माया, दुपारी में काये भगत आइं?' बीरु की घरवाली खां देख कें मैनें पूछो।

'जा चिठिया आई, तनक पढ़ियो काय लिखो।'

चिठियां खोली, तो ऊमें बीरू के दसकत हते।

लिखो तो--'मैं इतै अच्छी तरासें हों, किलींजरी करबो सीख लाओ। भौजी सें पांव परबों कै दइयो।'

'जिज्जी जानै कबै आहैं, अब तो धीरज नई बंधत।' कात-कात बा मोंसे चिबक के सिसक-सिसक कें रोउन लगी।

'सिरिन हो का, तनक जी करो करौं।' ऊ दिना मैंने उयै भौत समझाओ तो। बैसें सांची बात तो जाहै कै कितनउ समझाव, पै मन धीरज नइं धरत।

संकर जू ढारकें लौटी औ जैसई देरी पै पांव धरो कै काऊ ने पाछें सें मोरे पांव पकर लये।

'को आय ?' मैंने पोंछ-पलट कें देखो, पै चीन न पावो।

'काये भौजी, भूल गइं अपने बीरू खां ? तुमाई दया सें तुमाये लानें मैनत के पइसन को रंग लैकें आ गवो।

सुनकें मोरी आंखन में खुसी के अंसुआ भर आये।

———

अथाई की बातें

ठाकुर भगवान सिंह गौड़

अथाई पै बिलात पंच बैठे मोड़ी-मोड़न के आचरनो संबंदी न्याव-टंटे सुरजा रये। कानात अै कै कुठिया में गुर फोरो जात। इतेकई में लटकाई केसव के मौंड़ा फों उरानो देन आ गई, सो आज के लरका-बिटियन के ऐबन को बतकाव होने लगो।

मनोहर सिंग बोले कै जुगातन पैल आरजन को सासन हतो, ऊ सासन में मांस उर जनीमान्स अपने-अपने लरका बिटियन खों उकास परें सदाचारी महां पुरखन के किसा-कानियां सुनाबू करे उर ऐबन सें बचाबू करे उर ऐसो भै बेड़बू करे कै उनके मन में कबऊँ बुरई भावना ना आबै, कानात अै कै "भै बिन होय न पिरीत।' संगै-संगै बे बातै सोअ उनके गरैं उतारबू करत्ते कै बिरमचर्ज सें बल बड़त, बुद्दी आऊत डर बिलात बड़ी उम्मर पाऊत, कानात अै कै, "बिरमचरज सै होय सपूत, जी के बलको नईयां कूत।" बिरमचारी अपनो मताई-बाप पुरखा-पाटन को नांव ऊँचो उठावत। राम, लच्छमन, भीसम, करन, अरजुन, सिबाजू, आला-ऊदल, दुरगाबती उर झांसी की रानी जैसे कितेकऊ ई के उदाहरन अैं, जिनने अपने बल उर साअस सें देस की रच्छा के लानें पिरान निछाउर कर दये। बा बेरां मताई-बाप, पुरा-परोसी, गुरू उर पुरोहित सबई लरका बिटियन खों सूनो छोड़ दुक्कें देखबू करे उर उनको बतकाव सुनबू करे, जी सें पतो परबै कै कौनऊँ लरका-बिटिया के मन में कौनऊँ बुरी बात तो नइं आ गई। कजन्त कौनऊँ लरका-बिटिया में बुराई दिखानी तो बे उपाव गुनत्ते, जी सें बो बुराई मन सें अपढारी कड़ जाय। खाबे-पिआबे में अंतर पार देत्ते। ई बिध सें लरका-बिटियां पचीस बरस की उम्मर नों जा नइं जानत्ते कै काम काउत। घर में तो बैन-बिटिया, काकी-नानी को नातो चलतई····हतो पे पुरा-परोस में घर में बिलात सगी बैन-बिटिया को नातो मानत्ते। बूड़े पुराने कन लगत्ते कै इतै के

लरका-बिटिया नाहरन के संगै खेलत्ते डर इतै के ज्वानन के पाऊन सें पहार धरती में धंस जात्ते पै आज बई धरती के लरका-बिटिया बिरमचरज के आचरन सें भिरस्ट होकें ज्वानी आबे के पैल अपनी मौत खों टेर लेत। न समजी में बुद्धि, बल तेज उस साअस तो चलोई जात, उम्मर में सोई भारी कमी कश्लेत। सैकरन हजारन ज्वानन खों देख लेव कैई बन्न के रोगन ने आन घेरो, जिनके नंग-नंग के हाड़ दिखात। सुल, साधन, संयम, नियम सबऊ चलो गओ। ओखदई कराव तो का होत, कानात अै कै, 'फटे दूद नइं आऊत''

चन्दसेखर जू आजाद जो हरिसंकर बिरमचारी के नांव से ओरछे में रये, जिनको लिलार बिरमचरज सें चन्दा घाइं चमकततो। उनके हातन-पांउन में नुंगरिया नइं गड़तती। चीकने घाइं बे बताबू करे कै, अपुन जो खात-पियत, आंग सें लगाउत, नाक सें सूंगत बासें पैल रस बनत, रस सें लोऊ, लोऊ सें मांस, मांस सें मेदा, मेदा से अस्थि उर अस्थि सें मज्जा, जे छै धातुअन सें ओजस नांव की एक पिरबल धात बीरज बनत, जो आंग को राजा कुआउत। एक धात पचबे उर दूसरी धात के बनबे में पांच दिना लग जात बा कों सार-सार तो आंग में रै जात उर बेसार मलमूल पसीना में हो बाहर कड़जात। ऐसिअई छै धातन के बनबे में तीस दिना लग जात। अब गुनो कै आज को खाओ अन्न आद तीस दिना में शुद्द बीरज बनत। जो तीस दिना को बजन जोड़ें एक मन खाबे की बस्तुअन सें एक तोला बीर्ज बन पाऊत जो आंग के सबऊ अंगन खों नीचट बनावे खातिर बटत जात ऊमें सें एकई कौड़ी भर कमें मों उतर जात, चमक चली जात, साहस उर उतसाह नइं रत। आजाद जू खों जा बात को बड़ो ग्यान हतो। बे सबऊ खों नोंनी सीख देवू करे कै कितेक कठनाई सें तो बीर्ज बनो, उअै रखाबे को अपनो काम आय काय सें कै अपुन ना समजी में आंग के राजा खों खोकें पछाऊं पछतात....।

काऊने आजाद जू सें सवाल करो कै, ''सबऊ बिरमचारी बनजै तौमान्स कां सें पैदा हुइसें? सो उनने तुरतइं ज्वाब दओ कै, ''एक कानात है' एक नारी सदा बिरमचारी' संयम उर नियम सें चलें तो खूब लरका-बिटिया हुअें उर आंग में कमी ना आहै पै आज तो हम जो देखरये कै जनावरन में तो संयम नियम है पै मान्सन ने सी अपनो सबऊ नियम खो दओ। अपनी पोथिन खों बांचे कूत परत, कानात अै कै, ''बिरमचरज के बल सें देवतनने मीत खों जीत लओ तो, भीसम न्याव में अजीत हते उर हनूमान जू खों अपने बल को कूत नइं हतो।

मथुरादास बोले कै सदाचार तो घर-घर में अपनायें चाइये। आज के लरका-बिटियां चायें तो सांसऊं बिरमचारी बन सकत काय सें कै पैल के मान्स बिना

पढ़े जब अपने मन खों काबू में कर लेत ते तो आज तो पढ़ी-लिखी समाज अै। का नइं कर सकत कजन्त पढ़ाई-लिखाई में कौनऊं औगुन होय जीसें सदाचार के पालन में अंतर परत होय तो बा में सुधार के लानें आव कर सकत। बा बात सो दूसरी है कै तुम कितेकऊ नोंनो कओ हमें माननेइं नइंयां काय सें कै गुसाइं जू ने फैलइं कै दई कै, ''जी खों प्रभु दारुन दुख देहीं, वाकी मत पैलऊ हर लेहीं।''

जनतन्त में बल, बुद्धि उर साहस चानें ऊर जो उबइं आहै जब बिरमचर्ज को अनोपान पड़ हो लिख हो उर बूढ़े-पुराने महापुरसन को सनसरन करही।

मदन बोले कैसी नोंनी बात सुनाई कजन्त, ''एक नारी सदा बिरमचारी बन जायें तो जन तन्त में सुख उर सान्ती अपढारी १छयाअें।
